भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

मूल्य : दस रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०
संस्करण 1989

कलापक्ष : हरिपाल त्यागी
मुद्रक : नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस
गली नं० २, बलबीर

VANI KA VARDAN

आमुख

पहले मनुष्य जाति को बोलना नही आता था। धीरे-धीरे हम बोलना सीख गये, और फिर शिष्टाचार भी। क्या अच्छा, और क्या बुरा ?—इसकी समझ और अपने जीवन को किस प्रकार जिया जाये इसकी आदर्श लगन हमारे अन्दर हो। इस दिशा में प्रस्तुत कहानियाँ स्वस्थ मार्गदर्शन करेंगी और हमारे राष्ट्र के भावी कर्णधारों के चरित्र को सबल प्रदान करेंगी। प्रस्तुत 'वाणी का वरदान' (कहानी-संग्रह) की पाडुलिपि भारत सरकार के प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय द्वारा २२वी प्रतियोगिता मे पुरस्कृत हुई थी। पुस्तक सरल, सुबोध भाषा मे तैयार की गई है, जिससे नवसाक्षर प्रौढ़ों को आसानी से समझ मे आ सके।

—प्रकाशक

अनुक्रम

१ | आशीर्वाद

गुजरात के एक गाँव में रहती थी वह लडकी, जिसका नाम था कमला। कमला ज्यादा पढ़ी-लिखी नही थी। लेकिन उसकी बुद्धिमत्ता देखकर राहुल प्रभावित हुए बिना न रह सका। वह एक डाक्टर था और कमला के गाँव के अस्पताल में नया-नया आया था।

एक दिन कमला अपने पिता के साथ राहुल के पास आई। वह पिता की बीमारी से काफी परेशान थी। उसकी परेशानी उसके उदास चेहरे से साफ-साफ झलक रही थी। राहुल की पैनी निगाह से यह बात छिपी नही रह सकी। उसने कमला के पिता की परीक्षा करने के बाद, कमला से अकेले में बात की, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"कमला।"

"तुम्हारे पिता का नाम?"

"जगदम्बी प्रसाद।"

"इन्हें अस्पताल में रखना होगा, क्योंकि घर में

शायद ठीक से इनका इलाज नहीं हो सके।"
कमला कुछ न बोली।

"घर में और कौन-कौन है ?"
"कोई नही।"
"तुम अकेली रह लोगी ?"

"हाँ।"

"पढ़ती हो?"

"नहीं"'। हम गरीब हैं, डाक्टर साहब। मेहनत-मजदूरी करके किसी तरह पेट पाल लेते हैं। इसमें पढ़ाई कैसे हो सकती है?"

राहुल ने कमला की ओर गौर से देखा। उसे गरीबी का दुख जरूर था, पर गरीब होने का नहीं। काम करके अपना जीवन-यापन करने का उसे सन्तोष था। राहुल ने न जाने ऐसी क्या बात देखी कि वह कमला से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका और उसका यह आकर्षण रोज-रोज बढ़ता ही गया। कमला हर रोज सुबह-शाम अपने पिता को देखने आती और खाने का सामान रख जाती। एक दिन कमला से राहुल ने कहा, "कमला, तुम्हारे पिताजी अब काफी ठीक हो गए है—उन्हे घर ले जा सकती हो, पर उनकी एक आदत छुड़ानी होगी।"

"पीने की आदत—है न डाक्टर साहब! मैं तो कहते-कहते थक गई हूँ। पर सुनते कहाँ है मेरी। अस्पताल में बगैर शराब के कैसे रह गए, यही आश्चर्य की बात है।"

"कुछ तो करना ही होगा, कमला!" राहुल ने

चिन्तित होते हुए कहा ।

"मैं जानती हूँ, डाक्टर साहब, पर उन्हें मना करो तो डांटते हैं । कहते हैं, मेरी चिन्ता ही उन्हें पीने को मजबूर करती है ।"

"तुम्हारी चिन्ता...वह क्या...?"

थोड़ी देर कमला चुप रही । फिर सिर झुकाते हुए आहिस्ता से बोली, "डाक्टर साहब, मैं लड़की जो ठहरी और लड़की की शादी की चिन्ता तो हर मां-बाप को होती ही है ।"

"हां--!" हँसते हुए राहुल बोला, "तो शादी कर लो तुम ।"

"कौन करेगा...एक तो गरीब, ऊपर से बाल-विधवा...।"

और कमला चली गई । उसके पिता भी चले गए । राहुल सोचता रहा ।

दो-चार दिन के बाद ही कमला फिर आई राहुल के पास—"डाक्टर साहब, आप कुछ कीजिए न...बाबू फिर पीने लगे हैं और उनकी तबीयत फिर..."

राहुल फौरन कमला के साथ उसके घर आया । उसके पिता को शराब ने ही रोगी बना दिया था, फिर भी वह शराब का साथ न छोड़ पा रहा था । राहुल

ने जब उससे कहा कि अपनी कमला के लिए उसे शराब छोड़ देनी चाहिए, तो वह रो पड़ा। बोला, "बेटा, मैं बुढ़ापे की देहरी पर खड़ा हूँ और जवान बेटी घर में बैठी है। उसी की चिन्ता खाए जाती है। गरीबी और बेटी—दोनों का गम दूर करने के लिए ही तो पीता हूँ। कम-से-कम बेटी की ही चिन्ता से मुक्ति पाऊँ, तो…।"

राहुल दवा देकर घर लौट आया और रात भर कुछ सोचता रहा।

दूसरे दिन उसने एक बच्चे को भेजकर कमला को बुलवाया।

कमला आई, तो राहुल ने उससे सीधा प्रश्न किया, "कमला, तुम मुझसे शादी करोगी ?"

"जी…?" कमला को विश्वास नहीं हुआ।

"हाँ, कमला, मैंने तुमसे शादी करने का फैसला कर लिया है—क्या तुम साथ दोगी मेरा ?"

कमला की आँखें छलछला आईं। वह दौड़ी-दौड़ी अपने पिता के पास गई और फफक-फफककर रोने लगी। कई बार खुशी का मौका भी ऐसा होता है, जबकि मन हँसने के बजाय रोने को करता है। और एक सप्ताह के अन्दर ही राहुल और कमला विवाह के

पवित्र बन्धन में बँध गए। जब वे आशीर्वाद लेने कमला के पिता के पास पहुँचे, तो राहुल और कमला दोनों ने कहा—

"बाबू, हमें अगर तुम सचमुच प्यार करते हो और हमारा सुख चाहते हो, तो आज हमारे सामने कसम खाओ कि अब कभी शराब नहीं छुओगे। तुम्हारा यह वचन ही हमारे लिए सबसे बड़ा आशीर्वाद होगा।" आँसुओं से डबडबाई जगदम्बी की आँखें खुशी से चमक उठी। उसने कसम खाई कि अब से वह शराब को कभी हाथ नहीं लगाएगा।

राहुल आज बहुत प्रसन्न था कि उसने अपने कर्तव्य और प्यार—दोनों में सफलता पाई थी, और कमला अपने भाग्य को सराह रही थी। वह खुश थी कि उसे राहुल जैसा पति मिला।

□

२ | दोस्ती

आज रमपतिया बहुत खुश थी। उसका इकलौता लड़का रामू नौवीं कक्षा पास कर, दसवीं में गया था। उसके लिए नये स्कूल का बन्दोबस्त और किताबों तथा कपड़ों की चिन्ता तो उसे थी ही, पर उसके परीक्षा में पास होने की खुशी के सामने इन चीजों की चिन्ता उसे नहीं के बराबर ही थी।

रमपतिया को याद है, रामू के बाबू मरते वक्त कह गए थे, "रामू की माँ, रामू को पढ़ाना-लिखाना। गँवार न रहने देना। रमपतिया घर-घर घूम-घूमकर चौका-बर्तन कर, पैसा जुटाती रही और रामू को स्कूल में पढ़ाती रही। रामू भी होशियार निकला। उसने अपनी मेहनत से माँ की मेहनत को सफल बनाया। वह अपने अन्य साथियों की तरह खेलने-कूदने अथवा शरारत करने में अपना समय नष्ट नहीं करता था। वह माँ के कष्ट को शायद समझता भी था और उसे अनुभव भी करता था। स्वभाव से गम्भीर और

मेहनती रामू को देखकर रमपतिया उसके सुनहले भविष्य का सपना देखने लगी थी। पर एक चिन्ता उसको खाये जा रही थी। उसे अपनी गरीबी की जरा भी चिन्ता न थी। वह सोचती, जब तक दम है—मेहनत कर ही लूंगी, लेकिन हरिजन होने के नाते जो दुत्कारें उसे सहनी पड़ी हैं, कहीं पढ़ने-लिखने के बाद भी उसके बेटे को न सहनी पड़ें।

जब कभी रामू स्कूल से मुंह लटकाये घर लौटता, तो रमपतिया का दिल धक से रह जाता। सबसे पहला प्रश्न वह यही करती, "आज तुम्हें किसी ने क्या कुछ कहा, बेटा ?"

रामू सिर हिलाकर मना कर देता। रामू ने अपनी मां से कभी कोई फरमाइश नहीं की, न ही कोई शिकायत की। थोड़ा बड़ा होने के बाद एक बार जरूर अपनी मां से उसने कहा था, "मां, तुम अकेले इतना काम करती हो—मुझसे देखा नहीं जाता। अगर कहो तो मैं भी कुछ हाथ बँटाऊं !"

इस पर रमपतिया ने बस यही कहा था, "ना, , तुम बस पढ़-लिख ही लो, तो मेरे सीने का हो जाए, उस बोझ के सामने यह बोझ लिए।"

रमपतिया उसे किसी दूसरे के घर जाकर कभी कोई काम नहीं करने देती थी। लेकिन पढने-लिखने के बाद जो समय बचता, उसका उपयोग वह घर के कामो में माँ का हाथ बँटाकर करता। कभी-कभी रमपतिया अपने बेटे पर निहाल होती हुई कहती, "रामू, तुझे तो किसी अच्छे घर में पैदा होना था रे!"

"यह अच्छा घर क्या होता है, माँ?" रामू पूछ बैठता।

"अरे, खाता-पीता घर—किसी क्षत्रिय या ब्राह्मण का घर।"

"खाता-पीता तो मैं भी हूँ और यह क्षत्रिय-ब्राह्मण होने की बात मेरी समझ में नहीं आती।" भोले रामू का उत्तर सुनकर रमपतिया ने कहा, "समझ जाएगा, बेटा! पता नहीं, पिछले जन्म मे कौन-सा पाप किया था हमने, जो इस जन्म में हरिजन के घर पैदा हुए।"

तब तो रामू की समझ में कोई बात नहीं आयी थी, पर धीरे-धीरे लोगों की उपेक्षित नजरो को और उनकी गालियों को वह समझने लगा था। उसका कोमल मन सोचता भी था—आखिर हरिजन होना गुनाह क्यों बन गया है? लेकिन उसने कभी कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। पर ग्यारहवी कक्षा में जाते-

जाते वह जवान हो चुका था और एक दिन अपनी ही कक्षा के एक दोस्त के आरोप को वह बर्दाश्त न कर सका। हर रोज दूसरे लड़के किसी-न-किसी बात को लेकर हरिजन बच्चों को छेड़ते या दुत्कारते ही रहते और बच्चे लड़ते, आपस में मार-पीट भी करते या फिर मास्टरों से शिकायत करते, पर रामू कभी कुछ न कहता। वह चुपचाप सब कुछ सहता था। चुप रहना उसे पसन्द था। लेकिन आखिर किस सीमा तक? हर चीज की कोई सीमा तो होती ही है!

चौधरी का लड़का यादवेन्द्र, जो रामू को किसी भी तरह पसन्द नहीं कर पाता था, हमेशा किसी-न-किसी बात को लेकर रामू को तंग करता रहता। उसे जलन होती कि एक हरिजन लड़का इतना तेज और मेहनती कैसे है। पढ़ाई-लिखाई में रामू सबसे आगे था, तो खेलने-कूदने में यादवेन्द्र।

एक दिन माँ की तबीयत खराब होने की वजह से रामू जरा देर से स्कूल पहुँचा। जैसे ही वह अपनी कक्षा में घुसा, बच्चों ने, जिनका अगुवा यादवेन्द्र था, उसे पकड़कर मारना शुरू कर दिया। रामू की समझ में कुछ न आया। वह अपने को बचाने के लिए शिक्षकों के कमरे की तरफ भागने लगा तो यादवेन्द्र ने उसका

हाथ कसकर पकड़ लिया और फिर उसके बालों को खींचते हुए बोला, "क्यों रे हरिजन के बच्चे, चोरी करते शर्म नहीं आयी !"

रामू अवाक् था। चोरी और वह करे! शोर सुन-कर तब तक कुछ शिक्षक अपने कमरे से बाहर निकल आये थे।

"क्या हो रहा है?" एक ने पूछा।

"सर, इसने मेरी अँगूठी चोरी की है।" यादवेन्द्र ने आरोप लगाते हुए कहा।

"रामू, तुमने चोरी की!" संस्कृत के शिक्षक नाक सिकोड़ते हुए बोले।

"नहीं, सर...!" रामू रुआँसा हो रहा था। उसका मन कर रहा था कि यादवेन्द्र को वह खूब मारे और कहे—अब बता, किसने चोरी की है, बेवजह यह इल्जाम! लेकिन उसके गले से आवाज नहीं निकल रही थी। तब तक प्रधानाध्यापक वहाँ आ पहुँचे। सब थोड़ा सिटपिटाए। वह रामू को यादवेन्द्र से अलग करते हुए बोले, "क्या बात है?"

यादवेन्द्र ने अपना आरोप दोहराया। रामू की ओर देखते हुए वह बोले—

"रामू, क्या यह सच है कि तुम्हारी माँ की तबीयत खराब है?"

"...पर, सर...!"

"तुमको पैसे की भी जरूरत थी न?"

रामू से इस तरह प्रश्न होते देखकर यादवेन्द्र बहुत खुश था। पर रामू पानी-पानी हुआ जा रहा था। उसने एक बार सिर उठाकर सीधे प्रधानाध्यापक की ओर देखते हुए कहा, "सर, मैं गरीब जरूर हूँ, पर मैंने चोरी नहीं की है। चोरी करने की तो मैं कभी कल्पना भी नही कर सकता।"

"मैंने कब कहा, रामू, कि तुमने चोरी की !"

यादवेन्द्र, समझ न पाया। रामू की जान में जान आई।

"यादवेन्द्र, क्या तुमने रामू को चोरी करते हुए देखा था ?"

"नही, सर !"

"फिर तुमने कैसे जाना कि चोरी रामू ने ही की ?"

"सर, और कौन कर सकता है ? इसको पैसे की जरूरत है—कल ही तो यह राकेश से कह रहा था ! हरिजन का बच्चा''''" कहते हुए यादवेन्द्र एक गाली बक गया।

"वाह, तुम तो चौधरी के बेटे हो न ! इसलिए मुंह से ऐसे अच्छे-अच्छे शब्द निकाल रहे हो और यह हरिजन का लड़का इसलिए तब से चुप है, जबकि चोरी

इसने नहीं की।"

सब अवाक् उनकी तरफ देखते रह गए। अपनी जेब ने अँगूठी निकालते हुए उन्होंने यादवेन्द्र से पूछा, "क्या यही है तुम्हारी अँगूठी ?"

"हाँ, सर...लेकिन..." अब यादवेन्द्र की सकपकाने की बारी थी।

"कल तुम जहाँ गुल्ली-डंडा खेल रहे थे, वहीं यह अँगूठी गिर पड़ी थी। जब मैं उधर से गुजर रहा था, तो मेरी इस पर नजर पड़ गई। आज मैं पूछने ही वाला था कि यह अँगूठी किसकी है...। खैर, तुमने एक निर्दोष, भोले लड़के पर इल्जाम इसलिए लगाया कि वह हरिजन है ! मैं इसके लिए तुम्हें कभी माफ नहीं करूँगा। तुम्हें इस बार परीक्षा में बैठने की इजाजत नहीं मिलेगी।"

यादवेन्द्र की आँखों के सामने घर में पिता की क्रोधित आँखें, एक साल पीछे रहने की बात, सब घूम गई। वह प्रधानाध्यापक के पाँवों पर गिर पड़ा।

"तुम्हें मैं माफ नहीं कर सकता।"

"सर, माफ कर दीजिए। गलती तो सबसे हो जाती है !" यह रामू की आवाज थी।

यादवेन्द्र की आँखों में शर्म के आँसू झलक आये।

३ | वाणी का वरदान

मनुष्य पहले मूक होते थे। इसका कुछ सही-सही ज्ञात नहीं है कि सर्वप्रथम मनुष्य को कब वाणी मिली। देश-देश में इस सम्बन्ध में विभिन्न कथाएँ प्रचलित हैं। सबसे मनोरंजक कथा हिन्दू ग्रन्थों में है। इसका वर्णन इस प्रकार है :

मनुष्यों को बोलने की शक्ति नहीं थी। जैसा अब भी इतर प्राणी संकेतों तथा नेत्र-संचालन से परस्पर भावना और विचारों का विनिमय कर लेते हैं, उसी तरह आरम्भ में मनुष्य भी विचारों का आदान-प्रदान कर लेते थे। मनुष्य को एक बात समझ में नहीं आती थी कि आकाश में छिपे हुए देवलोक के वासी देवगण मृत्यु, प्राकृतिक विपत्ति आदि क्यों भेजते हैं? उन्हें इसका कोई समाधान नहीं मिलता था। कई बार सारे जनों ने सम्मिलित रूप से पूजा, आराधना और प्रार्थनाएँ कीं, किन्तु देवगण नहीं रीझे। मनुष्य जाति का ध्रुव विश्वास था कि देवलोक में अगाध

सुख-सम्पत्ति है। इनका विश्वास था कि देवलोक रोग, मृत्यु और प्राकृतिक विपत्तियों से परे है, क्योंकि उस लोक में ये बाधाएँ हैं ही नही। कई भारत के धर्म-ग्रन्थों में भी कई बार यह उल्लेख मिलता है कि पराक्रमी असुरों और मानवों ने देवलोक जीत लिया था।

अस्तु, एक बार सभी लोगो ने एक सम्मिलित सभा बुलायी। उसमें यह निश्चय किया गया कि देवलोक को जीत लिया जाए। किन्तु, प्रस्ताव पास होने के बाद प्रश्न यह उठा कि इस कार्य को सम्भव किस प्रकार कि- जाए। अनेक विचार रखे गये। देवलोक ऊपर आकाश के सघन नीले पर्दों मे छिपा हुआ था और वहाँ जाने का कोई मार्ग नही था। सोच-विचार के फल स्वरूप समस्या और जटिल होने लगी। सहसा तीक्ष्ण बुद्धि के एक व्यक्ति ने सकेत मे एक प्रस्ताव रखा कि यदि ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी या मीनार जैसी वस्तु बनाई जाए, तो देव-विजय सरल हो जाएगी। सीढ़ी बनाने की कल्पना- [illegible] थी,

[illegible] आवान-
[illegible] की भांति
नही था।

कुछ लोग आहार (अन्न और शिकार) की व्यवस्था के लिए रख लिये गये और बाकी सारे लोगों को मीनार-निर्माण में लगा दिया गया।

लोग जोश से नहीं थकते थे, शीघ्र ही गारा तैयार होने लगा। चारों ओर से पत्थर, मिट्टी, लकड़ी एकत्र की जाने लगीं। भूमि के बहुत बड़े भाग में मीनार की नींव डालने का शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ। सारे जन नृत्य और पूजन करने लगे। पूजा और नृत्य के उल्लासपूर्ण समारोह के बाद मीनार की नींव डाली गई। बड़े-बड़े तालाब बनाकर उनमें पत्थर और मिट्टी का गारा तैयार होने लगा। मीनार की नींव में अनगिनत पशुओं की बलि दी गई। जन की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या से पुरोहित ने नींव में पहला पत्थर डलवाया। इसके उपरान्त प्रातःकाल सूर्योदय होते ही सभी कार्यरत हो जाते थे और संध्या को सूर्यास्त तक कार्य चलता रहता था। दिन बीतते गए, मीनार ऊँची होती गई। मीनार की सुरक्षा का लोगों ने इतना अधिक प्रबन्ध किया था कि कोई भी अनधिकारी व्यक्ति या प्राणी वहाँ जा नहीं सकता था! पत्थर के धनुष-बाणों से सज्जित युवा सारी रात जागकर पहरा देते रहते थे।

देखते-देखते मीनार आकाश की पहली परत से कुछ ही नीचे रह गयी। एक बार कुछ देवदूत उस राह से गुजरे। उन्होंने हजारों-लाखों लोगों को काठ की
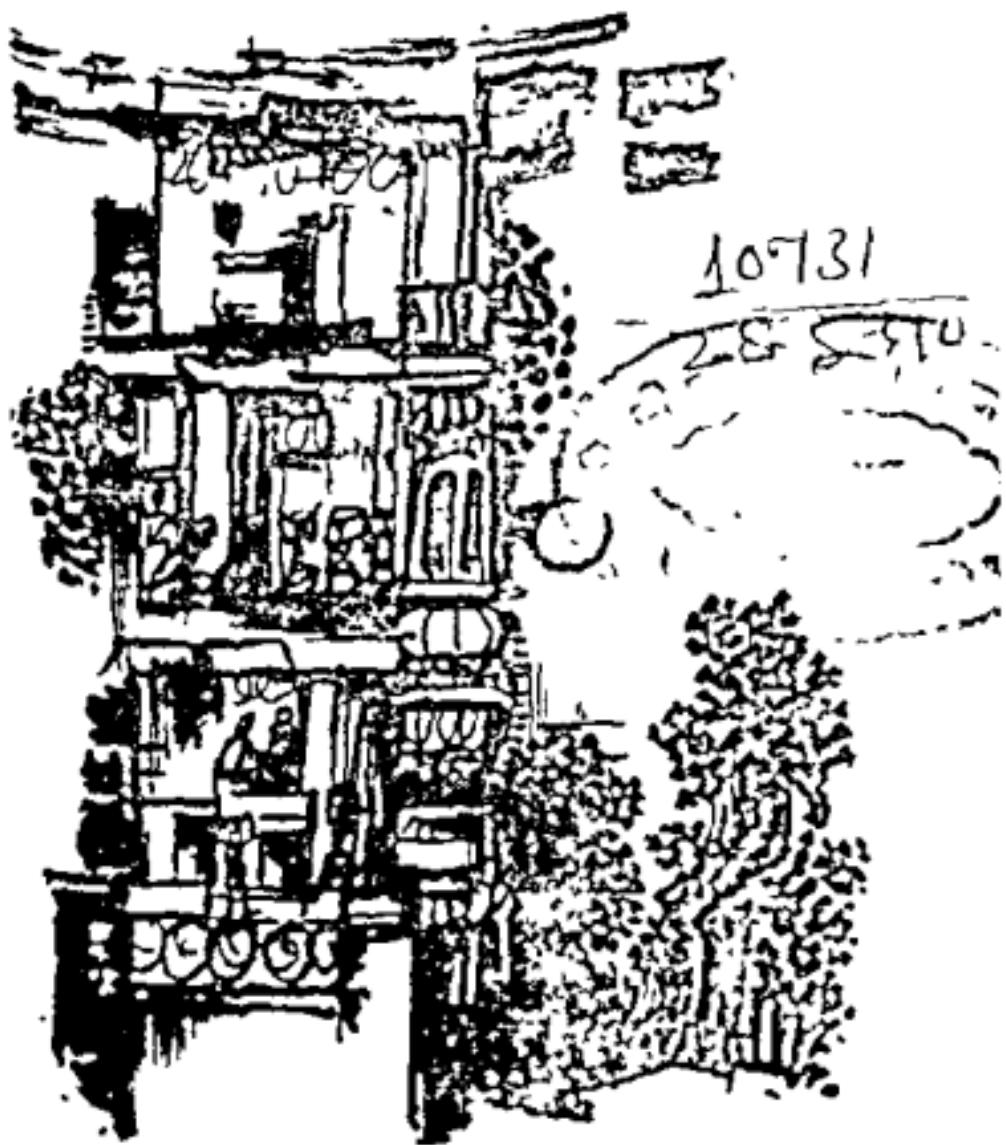
सीढ़ियों पर चढ़कर मीनार पर काम करते। शिल्पियों को पत्थर, मिट्टी, काठ पहुँचाते देखा। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे भागे-भागे गये और देवसभा में यह सूचना पहुँचाई। कुछ देवगणों ने अन्तरिक्ष से आकर देखा। उन्होंने इसे मनुष्यों का कौतुक समझा और हँसते हुए लौट गए।

मनुष्यों का निर्माण-कार्य कई गुना अधिक वेग से बढ़ने लगा। कुछ ही दिनों में मीनार आकाश की दूसरी परत के ऊपर चली गई। शिखर पर पहुँचकर वयस्क जन विजयोल्लास से किलकारियाँ भरने लगे। देवगण इस बीच इनकी यह लीला कौतूहल से देख रहे थे। उस दिन मीनार के तल-भाग में मानवों ने अत्यन्त उल्लास से नृत्य किया। सारी रात्रि बीत गई। जलती हुई उल्काओं के प्रकाश में सुन्दरियाँ विह्वल होकर नाचती रह गईं। तब चिन्तित होकर उन्होंने देवसभा को यह समाचार पहुँचाया। देवों के स्वामी को शंका हो गयी। उन्होंने विशिष्ट चरों को पृथ्वी पर टोह लेने के लिए भेजा। मीनार के चारों ओर गहरी खाई थी, जिसमें अग्नि धधक रही थी। किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए इन लोगों ने मीनार की, उसे चारों ओर, नीचे से ऊपर तक अभिमंत्रित कर, सुरक्षा-व्यवस्था

कर ली थी। देवदूत मीनार की सीमा में प्रवेश नहीं कर सके, लेकिन उन्होंने छद्म वेश बनाकर पास के ग्रामों से यह ज्ञात कर लिया कि इस मीनार का उद्देश्य देवलोक-विजय है। उन्होंने लौटकर देवों से कहा। देवगणों को यह विश्वास नहीं हुआ कि मीनार ऊँची उठाते-उठाते ये मनुष्य इसे स्वर्ग के द्वार तक ले आयेंगे। फिर भी उन्हें चिन्ता हो गई और इस सम्बन्ध में अनवरत सूचनाएँ देते रहने के लिए उन्होंने दूतों को नियत कर दिया।

धीरे-धीरे मीनार आकाश की तीसरी परत को लाँघकर ऊपर की ओर उठने लगी। अब देवगण घबराये। उन्होंने ऐसे प्रयास भी किये कि मीनार टूट गिरे अथवा इसका निर्माण बन्द हो जाए, लेकिन देवताओं की एक नहीं चली। मीनार का वज्र, अस्त्र-शस्त्र अथवा छल-बल किसी से भी बाल-बाँका नहीं हुआ। मीनार दिन-दिन ऊँची होती चली गई। कभी-कभी मीनार के शिखर पर कार्य करनेवालों को दूरस्थ स्वर्ग-द्वार दिखाई दे जाता था और वे किलकारियाँ मार कर नाचने लगते। इनके हर्षोल्लास से देवगणों का हृदय थर्रा उठता था। उनकी सारी बुद्धि इसका मार्ग निकाल पाने में थक गई।

एक दिन देवसभा में इसी विषय को लेकर चर्चा हो रही थी। किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था कि कैसे इस संकट को रोका जाए। हठात् देवाधिदेव के मन में एक विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने सभा को कहा, "यदि हम मनुष्यों को वाणी का दान दे दें, तो मीनार का निर्माण बन्द हो ही जाएगा।" लोगों की समझ में इसका परिणाम नही आया। स्वयं वाणी की स्वामिनी देवी इस पर विस्मित होकर देवाधिदेव को देखने लगी। एक सभा-सदस्य ने उठकर कहा, "वाणी का दान देने पर तो मनुष्य और प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न हो जाएँगे। मूक नरों से हम त्रस्त हो उठे है, वाणी-सम्पन्न मनुष्य तो हमें कही का न रहने देंगे!"

देवाधिदेव हँसने लगे। उन्होंने कहा, "आपने तर्क से इसका परिणाम नहीं सोचा है। मनुष्य मूक हैं, इस कारण उनमें प्रचण्ड एकता है। इसी कारण वे स्वर्ग पर चढ़ते आ रहे हैं। वाणी प्राप्त होने पर वे वाचाल हो जायेंगे और परस्पर एक-दूसरे की आलोचना करने लगेंगे। फल यह होगा कि उनमें कलह हो जाएगा और मीनार अधूरी छोड़कर वे कलह-मग्न हो जायेंगे।

इस पर सारी सभा सहमत हो गई। देवाधिदेव के साथ वाणी की स्वामिनी देवी और समस्त देवगण

स्वर्ग-द्वार पर आ खड़े हुए। एक बड़े पात्र में वाणी से पूपित अक्षत लेकर वाणी देवी ने 'वाचालो भव' कहकर वह पात्र मीनार पर उँडेल दिया। अक्षत मीनार पर कार्यरत स्त्री-पुरुषों पर गिरे, नीचे पत्थर-गारा पहुँचाते हुए जन-समूह पर गिरे, और प्रहरियों पर गिरे। क्षण भर में ही चमत्कार हो गया। जब तो मूक बने मनुष्य बोलने लगे। मीनार के शिखर पर तथा गारा ढोने वाले समूह में अधिकांश स्त्रियाँ थी। अक्षत स्त्रियों पर अधिक गिरे, पुरुषों पर उनकी मात्रा कुछ कम पड़ी। अब वे परस्पर विवाद करने लगे। एक-दूसरे से कहने लगा, "तुम यह पत्थर यहाँ मत लगाओ, उधर लगाओ।" कोई स्त्री किसी से कहने लगी, "तुम्हारे पुरुष कम कार्य करते है, मेरे अधिक!" किसी के जन आखेट पर गये थे। उसने कहना आरम्भ किया कि वे अधिक महान कार्य कर रहे है, अन्यथा तुम काम नही कर सकती।

देखते-देखते परस्पर की बातचीत घोर कलह का रूप लेने लगी। वाणी का कलह मारपीट में बदल गया। क्रोध के मारे किसी ने पत्थर इधर पटक दिया, किसी ने सिर पर की गारे की टोकरी नीचे खड्ड में फेंक दी। सारे लोग मीनार को छोड़कर नीचे उतर

आये और झगड़ने लगे । कई लोग यह भी कहने लगे कि मीनार बनाकर देवताओं को हम क्रुद्ध कर रहे हैं । जो देवता हमें बोलने की अद्भुत क्षमता दे सकते हैं, वे प्रसन्न रहने पर और भी दान देंगे । देवगण स्वर्ग-द्वार से यह दृश्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। कलह और युद्ध में जन इस तरह उलझ गये कि किसी को कुछ ध्यान न रहा । कुछ देवगण अलक्ष्य भाव से आये और उन्होंने उनके चारों ओर तनी हुई मन्त्र-पोषित सुरक्षा चादर की डोर काट दी । फिर देवताओं ने मीनार पर वज्रपात कर, उसे धराशायी कर दिया। लड़ते-झगड़ते हुए मनुष्य-गण मीनार से बहुत दूर चले गये थे । वे उसे बचा न सके । जब वे क्रुद्ध होकर दुबारा मीनार के समीप पहुँचे, तो देखा कि वहाँ एक ऊँचा पहाड़ बनकर चारों ओर बिखरा था । देवताओं ने उत्कोच (घूस) के रूप में उस पहाड़ पर से नदियों की धाराएँ प्रवाहित कर दी और चारों ओर सुन्दर पुष्प खिला दिये, जिन पर भौंरे गुनगुनाने लगे ।

स्त्रियों को वाणी अधिक मिली थी । वे कलह शान्त होने पर नदियों के तीर पर बैठकर गीत गाने लगी । कहते हैं, आज भी स्त्रियाँ इसी कारण अधिक बोलती हैं । □

४ | राखी का मोल

साधू सिर्फ दस साल का था जब उसके मा-बाप दोनो ही हैजे के प्रकोप से चल बसे। साधू की समझ मे न आया, अपने और अपनी छोटी बहन राधा के गुजारे के लिए वह क्या करे! बड़े शहर के फुटपाथ पर ही उसने आँखें खोली थी। शहरी फुटपाथ के जीवन मे तो कोई परिवर्तन नही आया, लेकिन खेलते-कूदते साधू के जीवन मे एक मोड़ आ चुका था। कभी किसी की गाड़ी साफ करके, तो कभी किसी का सामान उठाकर साधू अपने और अपनी बहन के लिए एक समय का खाना जुटा पाता। गरीब माँ-बाप के लाडले बेटे साधू ने स्कूल का मुँह तो देखा नही था, पर जीवन के ऊँचे-नीचे थपेड़ो ने उसे जिन्दगी का वह रूप दिखा दिया था, जहाँ भावनाओं की कोई कीमत नही होती। पेट की भूख को मिटाने के लिए और नंगे तन को ढँकने के प्रयास में वहाँ वह सब किया जाता है, जिसे हम सब हर तरह से गलत कहते है। साधू नन्हे हाथो से

पड़ चुका था। समय का चक्र चलता रहा। साधू का मन माँ के प्यार और पिता के स्नेह के लिए तड़प रहा था। अपनी वहन को यह जान से ज्यादा प्यार करता था। पर एक वार जो बुरे काम के दलदल में फँस गया, उसे उस दलदल से निकालना बहुत ही कठिन होता है। अपनी वहन के हर सुख को ध्यान में रखकर साधू जिन्दगी के तूफान का मुकावला तो कर रहा था, लेकिन कभी चोरी करके तो कभी डकैती में भाग लेकर। तस्करों के काम में भी वह उनका साथ देता था। पुलिस उनके पीछे पड़ चुकी थी। वह भागता-छिपता रहता। राधा इन सब बातों से बेखबर बड़ी होती जा रही थी। वह सोचती थी कि उसका भाई किसी ऐसे साहव के घर पर ड्राइवर है, जहाँ दिन-रात काम करना होता है। साधू ने उसे यही वताया था। जव कभी वह ज्यादा जानना चाहती, तो साधू उसे यह कहकर चुप करा देता, "तुम अपनी पढ़ाई-लिखाई में ध्यान दो, मुझे काम करने दो।" राधा उससे आगे कुछ भी पूछ नहीं पाती। वह बचपन से ही शान्त स्वभाव की लड़की थी। वह अपने भाई को वहुत चाहती थी, उसकी हर वात मानती थी। आखिर इस संसार में उसके सिवा उसका और

ा भी कौन ! राधा पढने-लिखने में तेज निकली। ुग्गी-झोंपड़ी के स्कूल से निकल कर वह एक अच्छे

स्कूल में दाखिल हो गई और देखते ही देखते वह स्कूल से पास होकर कालेज जा पहुँची। इधर, माधु का नाम पुलिस के रजिस्टर मे एक नामी तस्कर के रूप में दर्ज

हो गया था। एक दिन पुलिस इन्सपेक्टर रहीम साधू को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसके घर आ पहुँचा, जहाँ राधा अकेली रहती थी। राधा पुलिस को देखकर जरा भी नहीं घबराई। उसे आखिर डर लगता भी क्यों? इन्सपेक्टर रहीम से उसने पूछा, "कहिए, मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ?"

"आप साधू को जानती हैं?" इन्सपेक्टर ने पूछा तो राधा हँस पड़ी—"भला अपने भाई को मैं नहीं जानूँगी?"

"अच्छा!" रहीम की समझ में नहीं आ रहा था, आगे वह क्या पूछे, क्योंकि राधा की बातों से उसे यह महसूस हो रहा था कि वह अपने भाई की करतूतों के बारे में बिलकुल अनभिज्ञ है।

राधा ने ही उससे पूछा, "आप मेरे भाई को कैसे जानते हैं?"

"वह...हम दोनों दोस्त हैं।"

"अच्छा...वह सचमुच बहुत अच्छे हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं। मेरे लिए तो वही मेरे माँ-बाप, सब कुछ हैं।"

रहीम ने अभी कुछ न पूछना ही उचित समझा। विदा माँगकर वह निकल गया। राधा ने इन्सपेक्टर

के आने की खबर जब साधू को दी, तो साधू को चिन्ता हो गई। उसने राधा से विस्तार में सारी बातें पूछ ली। पुलिस उनके घर तक पहुँच जाए, यह उसके लिए चिन्ता की बात तो थी ही। लेकिन सच्चाई कब तक छुपी रह सकती है! राधा को एक दिन इन्सपेक्टर रहीम ने आकर सारी बातें बताई और अपने आने का उद्देश्य भी बता दिया। कुछ देर के लिए राधा को लगा, जैसे सारा संसार घूम रहा है। पर थोड़ी देर के बाद ही उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आया, उसे देख कर इन्सपेक्टर रहीम भी चकित रह गया। राधा ने इन्सपेक्टर रहीम को राखी वाले दिन आने को कहा। राखी का त्यौहार दो-चार दिन के बाद ही था। कर्त्तव्य के सामने भावनाओं को कुचल देने के लिए राधा ने अपने को तैयार कर लिया था। क्योंकि अपनी जिन्दगी से यही तो शिक्षा मिली थी उसे। राधा ने अपने मन को कठोर बना लिया था।

राखी के दिन, साधू किसी भी हालत मे राधा के पास अवश्य आता था। इस बार भी वह आया। राधा उसी का इन्तजार कर रही थी। राखी बाँधने तक वह स्वयं को संयम में रखे रही। लेकिन पावन धागे को बाँध चुकने के बाद वह फूट पड़ी—"भैया, इससे तो

अच्छा था, हम भूखे-प्यासे मर जाते !"

"अरे क्या हुआ पगली !" साधू अचम्भित तो हुआ ही, ग्लानित भी हो गया। कहीं राधा को सारी बातें पता तो नहीं चल गया ? "गैर-कानूनी ढंग से धन कमाकर तुमने मुझे सुख देने की कोशिश क्यों की! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इस तरह का सुख तो ज़हर की तरह है, जो अन्ततः पूरे शरीर में फैल जाता है और अन्त में...! पर जाने दो, तुम्हें यह सब बातें कहने का क्या लाभ ? तुम्हारी बला से, मैं बचूँ या मरूँ!"

"राधा, किसने ये उलटी-सीधी बातें बतायी हैं ?"

"अगर ये बातें झूठ हैं, तो मेरे सिर पर हाथ रख कर कसम खाओ।"

यही तो नहीं कर सकता था साधू।

"आज राखी है, मुझे आशीर्वाद नहीं दोगे ?"

"मेरा आशीर्वाद तो सदा तेरे साथ है, राधा।"

"ऐसे नहीं।"

"फिर ?"

"तुम प्रायश्चित करो। मैं एक शरीफ, मेहनती और ईमानदार भैया की बहन होना चाहती हूँ।"

"राधा, अब तो बहुत देर हो चुकी। गरीबी का अन्धकार कितना भयानक होता है, वह मैंने देखा भी

है और भोगा भी है। यह उस गुफा के समान होता है, जहाँ कुछ पाने की लालसा में आदमी अपना सब कुछ गँवा देता है, यहाँ तक कि अपना जीवन भी।"

"पर, तुम्हारे इन उजाले में लिपटे नागों से अपनी सुख-शान्ति को डसवाने से तो अच्छा था कि हम अन्धकार की उसी गुफा में विलीन हो जाते।"

"अब मैं क्या करूँ ?"

"तुम्हें जेल जाना होगा।"

"क्या कहती हो ?"

"हाँ...मैंने पुलिस को बुला रखा है।"

"राधा...." और देखते-ही-देखते चारों ओर से पुलिस ने साधू को घेर लिया। राधा की आँखें भरी थी, पर होंठो पर मुस्कान थी। जाते हुए भाई को देखकर उसने कहा, "मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगी, भैया !"

साधू की आँखे भी भर आयी थी। इन्सपेक्टर रहीम ने डबडबाई आँखों से राधा को धन्यवाद दिया और कानून की मदद करने के बदले उसके भाई की सजा कम करवाने का उसे आश्वासन दिया।

राधा कुछ बोल नहीं सकी। वह समझ नहीं पा रही थी कि उसे राखी का मोल मिला या नहीं। वह चुपचाप अन्दर चली गयी। □

५ | सोने का पिंजरा

बहुत दिन पहले की बात है। एक सौदागर था। वह देश-विदेश घूम-घूम कर मोतियों का व्यापार किया करता था। कई बार वह अपने साथ अपने परिवार को भी ले जाया करता था। एक बार एक जंगल में उसके लड़के ने एक तोते के बच्चे को पकड़ा। पहले तो सौदागर अपने लड़के को समझाता रहा कि वह तोते को छोड़ दे। बिना वजह उस मासूम पक्षी को पिंजरे में रखने से क्या फायदा? लेकिन बाल-हठ के सामने उसकी एक न चली।

धीरे-धीरे वह तोता, जिसका नाम सौदागर ने 'मिट्ठू' रखा था, पूरे घर का प्यारा हो गया। उसके लिए सौदागर ने एक सुन्दर पिंजरा बनवाया। घर के सभी सदस्य मिट्ठू को अच्छी-अच्छी बातें सिखाया करते थे। मिट्ठू भी बड़ा ही समझदार था। वह बहुत जल्दी ही मीठी-मीठी बोली बोलना सीख गया। वह नाम और काम दोनों में ही वास्तव में मिट्ठू बन

या। वह अब हर एक को उसके नाम से पुकारने
गा। भूख लगती तो सौदागर के बेटे की तरह 'माँ,
ख़ाना दो, 'माँ, खाना दो' चिल्लाने लगता। सौदागर
जिस तरह अपने छोटे बेटे को प्यार से सोनू कह कर
पुकारता था, ठीक उसी तरह मिट्ठू भी सोनू को 'सोनू-
सोनू' पुकारने लगा। सोनू के दो बड़े भैयाओं को सोनू
की नकल करते हुए मिट्ठू 'बड़े भैया' और 'छोटे भैया'
कहकर आवाज लगाता था। तोते के लिए ताजी-
ताजी हरी मिर्चें मँगाई जातीं। उसके खाने में किसी
भी तरह की कमी नहीं होने दी जाती। सौदागर भी
जब कभी बाहर से आता, मिट्ठू से उसी तरह मिलता
जैसे परिवार के अन्य सदस्यों से। बाहर जाने लगता
तो अन्य लोगों की तरह वह मिट्ठू से भी विदा लेता।

कहने का अभिप्राय यह कि धीरे-धीरे मिट्ठू भी
उस परिवार का एक सदस्य बन गया।

इस तरह प्यार के साये में मिट्ठू के दिन बीतने
लगे।

इसी तरह दिन बीतते गये। सौदागर के बाहर
जाने का फिर मौका आया। वह घर के सभी सदस्यों
से विदा लेने के बाद मिट्ठू के पास आया; बोला,
"मिट्ठू, मैं इस बार फिर उसी तरफ जा रहा हूँ, जहाँ

यह सुनकर मिट्ठू थोड़ी देर तो चुप रहा। फिर बोला, "पिताजी, आप उसी पेड़ के नीचे खड़े होकर जिस पर कभी मैं रहता था, चिल्ला कर कह दीजिएगा कि उनका बेटा अब एक खूबसूरत पिंजरे में रहता है। उसे खाने को बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें मिलती हैं। वह एक बड़े आलीशान मकान के अन्दर रहता है। उसे अब किसी चीज की कमी नहीं है। पर, बन्द दुनिया में बसने के कारण, खुली दुनिया की हवा की गन्ध वह भूल चुका है।"

सौदागर यह सुनकर द्रवित हो उठा। पर, वह अपनी यात्रा पर चल पड़ा। जब वह व्यापार का अपना कारोबार खत्म कर, घर वापस लौटने लगा, तो वह फिर उसी जंगल से गुजरा। वहाँ पहुँचते ही उसे मिट्ठू का सन्देश याद आ गया। उसने सोचा, सन्देश मिट्ठू के घर वालों को अवश्य पहुँचा देना चाहिए। फिर क्या था, सौदागर उसी पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ जहाँ से वह कभी मिट्ठू को अपने साथ ले गया था। पेड़ के नीचे पहुँचकर उसने ऊपर की ओर देखा। पेड़ की डालों पर बहुत सारे तोते बैठे हुए थे। यह देखकर सौदागर बहुत ही खुश हुआ। वह उन तोतों को ऊँचे स्वरों में मिट्ठू का सन्देश सुनाने लगा—"तुम

से आते हुए हम लोग तुम्हें बीच जंगल से ले आये थे। इस बार भी मुझे उसी जंगल से गुजरना होगा। उस जंगल में अब भी तुम्हारे दोस्त-भाई वगैरह तो होंगे ही""उन्हें कोई सन्देश देना हो, तो बोलो""!"

यह सुनकर मिट्ठू थोड़ी देर तो चुप रहा। फिर बोला, "पिताजी, आप उसी पेड़ के नीचे खड़े होकर जिस पर कभी मैं रहता था, चिल्ला कर कह दीजिएगा कि उनका बेटा अब एक खूबसूरत पिंजरे मे रहता है। उसे खाने को बड़ी अच्छी-अच्छी चीजे मिलती है। वह एक बड़े आलीशान मकान के अन्दर रहता है। उसे अब किसी चीज की कमी नही है। पर, बन्द दुनिया मे बसने के कारण, खुली दुनिया की हवा की गन्ध वह भूल चुका है।"

सौदागर यह सुनकर द्रवित हो उठा। पर, वह अपनी यात्रा पर चल पड़ा। जब वह व्यापार का अपना कारोबार खत्म कर, घर वापस लौटने लगा, तो वह फिर उसी जंगल से गुजरा। वहाँ पहुँचते ही उसे मिट्ठू का सन्देश याद आ गया। उसने सोचा, सन्देश मिट्ठू के घर वालों को अवश्य पहुँचा देना चाहिए। फिर क्या था, सौदागर उसी पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ जहाँ से वह कभी मिट्ठू को अपने साथ ले गया था। पेड़ के नीचे पहुँचकर उसने ऊपर की ओर देखा। पेड़ की डालों पर बहुत सारे तोते बैठे हुए थे। यह देखकर सौदागर बहुत ही खुश हुआ। वह उन तोतों को ऊँचे स्वरो मे मिट्ठू का सन्देश सुनाने लगा—'तुम

सागा म स एक नन्हे तोते को दो साल पहले अपने छोटे बेटे की जिद पर मैं पकड़ कर अपने घर ले गया था। उसका नाम हमने मिट्ठू रखा है। उसी मिट्ठू ने तुम लोगों के लिए एक सन्देश दिया है। उसने कहा है कि मैं तुम लोगों को यह कह दूं कि मिट्ठू अब एक खूबसूरत पिंजरे में रहता है। उसे खाने को बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें मिलती हैं। वह एक सुन्दर घर के अन्दर रहता है। इसीलिए वह बाहरी दुनिया की हवा की गन्ध तक भूल चुका है।"

सौदागर ने देखा कि तोतों में से कोई जवाब नहीं आया, तो उसने सोचा, शायद मैं जल्दी में बोल गया। हो सकता है कि बातें उनकी समझ में न आयी हों। अतः उसने दूसरी बार अपनी बातें दोहराईं; तब भी तोतों से कोई जवाब न पाकर सौदागर ने सोचा, चलो एक बार और सुना दें। मिट्ठू के सन्देश को सौदागर ने तीसरी बार जोर-जोर से सुनाया। इस बार सौदागर ने देखा—एक तोता फड़फड़ाया और डाल से जमीन पर गिर पड़ा। सौदागर को बड़ा दुख हुआ। उसने सोचा, यह तोता शायद मिट्ठू का कोई सगा है, इसलिए उसके विछोह के दुख को यह सह नहीं सका।

घर पहुँचने पर सौदागर ने सबसे हालचाल पूछे

और बाहर से लाया हुआ तोहफा सभी में बाँटा । अन्त में वह मिट्ठू के पास पहुँचा और कहा, "कहो, मिट्ठू, कैसे हो ? देखो, मैं तुम्हारे लिए इस बार क्या लाया हूँ । यह सोने का पिंजरा है । यह बहुत बड़ा है और इसमें तुम आराम से घूम-फिर सकते हो । नया पिंजरा दिखाते-दिखाते अचानक सौदागर को याद आया, "अरे, मिट्ठू, मैं तुम्हारे घर, जंगल में भी गया था ।" मिट्ठू ने बड़े उत्साह से अपनी गर्दन उठायी और बातें सुनने के लिए सौदागर को उत्सुकता से निहारने लगा । सौदागर ने उसे सारी कहानी सुना दी । सुनकर मिट्ठू बड़ा उदास हो गया । सौदागर ने उसे ढाढ़स बँधाया, पर मिट्ठू सिर झुकाए रहा । अचानक देखते ही देखते मिट्ठू लोटने लगा और बेहोश हो गया । अब तो सौदागर भी बड़ा घबराया । उसने सोचा, जंगल में बेहोश हुए तोते को याद करके ही मिट्ठू का यह हाल हुआ है । सौदागर ने बड़े प्यार से मिट्ठू को पिंजरे से बाहर निकाला । बस, फिर क्या था, बाहर निकलते ही मिट्ठू फुर्र से उड़कर ऊपरी खिडकी पर जा बैठा । सौदागर और घर के अन्य लोग उसे देखते रह गये । उसे वे बुलाते रहे, पर मिट्ठू ने कहा, "आप लोगों ने मुझे बहुत प्यार दिया—जिसको मैं कभी

भुला न सकूँगा। पर आजादी सोने के पिंजरे से ज्याद
मूल्यवान है। आकाश, खुली हवा और एक डाल से
दूसरी डाल पर उड़ते फिरने की कोई कीमत नहीं। मैं
पिंजरे से निकल नहीं पा रहा था। निकलने की तर-
कीब मेरे किसी दोस्त ने बेहोशी की नकल करके बता
दी। अब मैं जा रहा हूँ।"

मिट्ठू सोने का मोह त्याग कर अब आजाद हो
चुका था। धीरे-धीरे खुले आकाश में उड़ता हुआ।
वह आँखों से ओझल हो गया।

□

६ | शनिदेव की पहल

एक बार देवलोक की दो हस्तियो में घोर विवाद छिड़ गया। दोनों ही एक-दूसरे से अपने को श्रेष्ठ कहने लगे। एक थे शनिदेव। दूसरी थी लक्ष्मी। लक्ष्मी की कृपा जिस पर हो, उसे संसार के सब सुख मिल जाते हैं; और शनिदेव जिससे नाराज हो जाएँ, उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है। दोनों ही घमण्ड मे भरे थे; देवताओ के लाख समझाने-बुझाने पर भी नहीं माने।

विवाद बढ़ गया, तो दोनों ब्रह्मा के पास न्याय के लिए पहुँचे। ब्रह्मा देवताओं के पूज्य थे। दोनों ने ब्रह्मा को अपने झगड़े की बात बताई।

ब्रह्मा चिन्ता में पड़ गए। किसे बडा कहें? उनके लिए दोनों समान थे। दोनो ही उनके अपने थे। यदि शनिदेव को लक्ष्मी से श्रेष्ठ कहें, तो लक्ष्मी नाराज हो जाएँगी और यदि लक्ष्मी को शनिदेव से श्रेष्ठ कहें, तो शनिदेव समझेंगे, ठीक से न्याय नही हुआ।

ब्रह्मा बहुत देर तक सोचते रहे। सहसा उन्हें एक विचार सूझा। उन्होंने कहा, "तुम्हारी श्रेष्ठता का उचित निर्णय मैं नहीं कर सकूँगा। मनुष्य तुम्हें पूजता है; वही इस बारे में सही निर्णय दे सकता है। मनुष्य-लोक में एक सत्यवादी राजा हैं। वह तुम दोनों की उपासना भी करते हैं। वे जानते होंगे कि तुम दोनों में श्रेष्ठ कौन है। तुम उन्हीं के पास जाओ।"

ब्रह्मा की बात मानकर दोनों पृथ्वी की ओर चल पड़े। राजद्वार पर पहुँचते-पहुँचते संध्या हो चली थी। राजा भजन-पूजन करने जा रहे थे। तभी सेवक ने लक्ष्मी और शनिदेव के आने की सूचना दी। सुनकर राजा चौंके—'स्वर्ग के देव धरती पर किसलिए? वह भी मुझसे मिलने आए हैं। जरूर कोई खास बात है।' राजा सोचने लगे। वह अगवानी को दौड़े। अपने पूज्य देवों को द्वार पर देखकर, राजा सुख से विभोर हो उठे। राजा ने दोनों के चरण छुए। फिर उन्हें आदर के साथ राजमहल में ले आए। उन दोनों ने भी राजा को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पाकर राजा खुशी से भर उठे। झुककर बोले, "मुझे आज्ञा दीजिए।"

उन दोनों ने अपने आने का उद्देश्य राजा को बता

दिया। फिर कहा, "आप सत्यवादी हैं। बताइए, हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है?"

यह सुनकर राजा डर और चिन्ता में डूब गए।

सोचने लगे, 'यह बैठे-बिठाये क्या मुसीबत गले पड़ी।
किसे श्रेष्ठ बताऊँ ? जिसे श्रेष्ठ न बताऊँगा, वह
रुष्ट हो जायेगा । शनिदेव रूठे, तो राजपाट चौपट। लक्ष्मी
रूठीं, तो राज्यलक्ष्मी चली जायगी।'

कुछ सोचकर राजा ने कहा, "रात्रि में आप दोनों
विश्राम करें। कल प्रातःकाल मैं राजसभा के न्याय
सिंहासन पर बैठूंगा, तभी इस पर निर्णय दूंगा।" दोनों
प्रसन्न होकर विश्राम करने चले गए।

राजा ने रानी को सारी घटना सुनाई। दोनों
चिन्ता में डूब गए। एकाएक राजा को एक उपाय
सूझा। उनका चिन्ता से भरा उदास चेहरा खिल उठा।
वह सुख से गहरी नींद में सो गए।

दिन निकला। ठीक समय पर तैयार होकर राजा
सभा-भवन में पहुँचे। सेवक भेजकर दोनों अतिथियों
को सभा-भवन में बुलवा लिया।

शनिदेव और लक्ष्मी सभा-भवन में पधारे। स्वागत
में राजा और सभासद उठकर खड़े हो गए। राजा के
न्याय-सिंहासन के दोनों ओर दो शानदार आसन रखे
थे। एक चाँदी का था, दूसरा सोने का। राजा ने सिर
झुकाकर दोनों से कहा, "आप अपना-अपना आसन
ग्रहण करें।"

यह सुनकर क्षण भर को तो दोनों ठिठक गए। फिर शनिदेव ने लक्ष्मीजी से कहा, "पहले आप बैठिए।" लक्ष्मी आगे बढ़ीं और सोने के आसन पर बैठ गईं। इसके बाद शनिदेव दूसरे खाली आसन पर जा बैठे। राजा भी अपने सिंहासन पर बैठ गए। सारी सभा चुप थी। लक्ष्मी और शनिदेव मौन बैठे हुए थे। वे राजा के न्याय की प्रतीक्षा कर रहे थे। काफी देर हो गई। राजा को चुप देख, शनिदेव ने कहा, "महाराज, हमें शीघ्र ही देवलोक लौटना है। पहले आप हम दोनों का न्याय करें।"

लक्ष्मीजी ने मुसकराकर कहा, "हाँ, शीघ्र न्याय कर दो। हमें वापस जाना है।"

राजा ने दृष्टि उठाकर दोनों को देखा। फिर गम्भीर होकर कहा, "न्याय तो हो चुका।"

दोनों चकित होकर राजा को देखने लगे। शनिदेव क्रोध से बोले, "क्या कहते है आप! जब से हम आए हैं, आप चुप बैठे हैं। न्याय कब किया आपने?"

राजा ने उसी गम्भीरता के साथ कहा, "पूज्यवर, मैं ठीक ही कह रहा हूँ। न्याय हो चुका है।"

अब शनिदेव क्रोध से काँपने लगे। बोले, "झूठ बोलते हो! न्याय कैसे हुआ? भूल गए, मैं कौन हूँ!"

"क्षमा करें, देव ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।" राजा विनम्रता से बोले।

"मैं भी नहीं समझी, आपने निर्णय कब किया?" लक्ष्मीजी भी क्रोध से बोलीं।

राजा समझ गए कि बात बिगड़ने वाली है। वह राजसिंहासन पर तनकर बैठ गए।

"आज्ञा दें तो कहकर निर्णय बताऊँ। निर्णय मैंने नहीं, आप दोनों ने स्वयं ही किया है।" राजा बोले।

"कैसे ?" दोनों एक साथ बोल उठे।

"आप लोग अपना-अपना आसन देखने का कष्ट करें। श्रेष्ठता के क्रम से आपने अपना आसन स्वयं ही चुन लिया है।" कहकर राजा ने सिर झुका लिया।

यह सुनकर लक्ष्मीजी को हँसी आ गई। शनिदेव क्रोध से गरज उठे, "तुमने मेरा अपमान किया है, राजा !"

राजा सिंहासन छोड़कर खड़े हो गए। हाथ जोड़कर बोले, "देव, आप और लक्ष्मीजी दोनों ही मेरी बात सुनें। सोना चाँदी से श्रेष्ठ माना जाता है। इसी ‹ स्वर्णासन चाँदी के आसन से श्रेष्ठ हुआ। मैंने ‹ आसन ग्रहण करने का निवेदन किया था, आपने स्वयं ही चाँदी का आसन अपने लिए

- बरदान -

चुना और स्वर्णासन लक्ष्मीजी को दिया। मैं कैसे अपराधी सिद्ध होता हूँ ?"

राजा की बात सुनकर शनिदेव का क्रोध शान्त हो गया। वह मुस्कुराते हुए बोले, "सचमुच तुमने यह अद्भुत न्याय करके हमारा गौरव बढ़ाया है। मैं मानता हूँ, लक्ष्मी ही श्रेष्ठ है।"

"नहीं, मैं कैसे श्रेष्ठ हुई ? श्रेष्ठ तो आप है। आपने मुझे स्वर्ण के आसन पर बैठाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है।"

क्षण भर में पासा पलट गया। दोनों एक-दूसरे को श्रेष्ठ बताते हुए स्वर्ग लौट गए।

७ | नन्हा किशोर

एक गाँव में एक औरत रहती थी। वह निःसन्तान थी। सन्तान पाने की लालसा उसकी इतनी तीव्र थी कि वह हर समय उदास रहा करती थी। पर वह कुछ कर नहीं सकती थी। संयोग से एक बार एक महात्मा उस गाँव में आये। उस औरत ने उनके सामने भी अपना दुख बखान किया, तो महात्मा ने उस औरत को एक बूटी दी और कहा, "इसे ले जाकर घर के किसी कोने में रख कर तुलसी के पत्ते से ढक देना। एक सप्ताह के बाद तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायेगी!" उस औरत ने हर्षित होकर बूटी ली और महात्मा के कहे अनुसार ही घर के एक साफ कोने में रखकर उसे तुलसी के पत्तों से ढक दिया। सात दिन के बाद उसने उन पत्तों को हटाया तो खुशी से फूली न समाई। बूटी की जगह वहाँ एक नन्हा-सा बालक लेटा हुआ था। उसके हाथ-पाँव सब छोटे-छोटे थे। अब और क्या चाहिए था उसे ? अपने बेटे को वह फूलों की सेज पर

सुलाती, सन्तरा और अनार का रस पिलाती तथा हर समय उसका मुख निहारती रहती। इस तरह उसके दिन कटने लगे।

कुछ दिन इसी तरह बीते। एक रात एक मेढक ने दूर से देखा कि उस औरत के घर में काफी तेज रोशनी हो रही है। मेढक को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उस औरत के मकान के और पास गया। वहाँ पहुँच कर मेढक ने आश्चर्य से देखा कि वहाँ कोई चिराग नही है। यह उस बालक का शरीर था, जिससे यह ज्योति निकल रही थी। उस स्वर्गिक ज्योति ने सारे घर में उजाला कर दिया था। मेढ़क ने मन ही मन मे सोचा, हमारी राजकुमारी के लिए यही सबसे उपयुक्त वर होगा। क्यों न इसे चुराकर अपने राजा के पास ले जाऊँ? यह सोचकर वह चुपके से घर के अन्दर दाखिल हो गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि औरत बेसुध सोई हुई है। पास में सोया हुआ था उसका वह नन्हा-सा कुमार। जिसके शरीर से वह ज्योति अब भी प्रस्फुटित हो रही थी। मेढ़क ने चुपके से नन्हे कुमार को अपने कंधे पर उठाया और अपने राजा के पास चल पड़ा। मेढ़क के राजा का महल पानी के अन्दर था। वहाँ पहुँचकर मेढ़क ने अपने

७ | नन्हा किशोर

एक गांव में एक औरत रहती थी। वह निःसन्तान थी। सन्तान पाने की लालसा उसको इतसी तीव्र थी कि वह हर समय उदास रहा करती थी। पर वह कुछ कर नही सकती थी। संयोग से एक वार एक महात्मा उस गांव में आये। उस औरत ने उनके सामने भी अपना दुख बखाम किया, तो महात्मा ने उस औरत को एक बूटी दी और कहा, "इसे ले जाकर घर के किसी कोने में रख कर तुलसी के पत्ते से ढक देना। एक सप्ताह के वाद तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायेगी!" उस औरत ने हर्षित होकर बूटी ली और महात्मा के कहे अनुसार ही घर के एक साफ कोने में रखकर उसे तुलसी के पत्तों से ढक दिया। सात दिन के बाद उसने उन पत्तों को हटाया तो खुशी से फूली न समाई। बूटी की जगह वहाँ एक नन्हा-सा वालक लेटा हुआ था। उसके हाथ-पांव सब छोटे-छोटे थे। अब और क्या चाहिए था उसे? अपने बेटे को वह फूलों की सेज पर

सुलाती, सन्तरा और अनार का रस पिलाती तथा हर समय उसका मुख निहारती रहती। इस तरह उसके दिन कटने लगे।

कुछ दिन इसी तरह बीते। एक रात एक मेढक ने दूर से देखा कि उस औरत के घर में काफी तेज रोशनी हो रही है। मेढक को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उस औरत के मकान के और पास गया। वहाँ पहुँच कर मेढक ने आश्चर्य से देखा कि वहाँ कोई चिराग नहीं है। यह उस बालक का शरीर था, जिससे यह ज्योति निकल रही थी। उस स्वर्गिक ज्योति ने सारे घर में उजाला कर दिया था। मेढ़क ने मन ही मन में सोचा, हमारी राजकुमारी के लिए यही सबसे उपयुक्त वर होगा। क्यों न इसे चुराकर अपने राजा के पास ले जाऊँ? यह सोचकर वह चुपके से घर के अन्दर दाखिल हो गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि औरत बेसुध सोई हुई है। पास में सोया हुआ था उसका वह नन्हा-सा कुमार। जिसके शरीर से वह ज्योति अब भी प्रस्फुटित हो रही थी। मेढ़क ने चुपके से नन्हे कुमार को अपने कंधे पर उठाया और अपने राजा के पास चल पड़ा। मेढ़क के राजा का महल पानी के अन्दर था। वहाँ पहुँचकर मेढ़क ने अपने

राजा से कहा, "महाराज, आप अगर नाराज न हों, तो कुछ अर्ज करूँ। आप राजकुमारी की शादी के लिए बहुत ही चिन्तित थे न ? मैंने एक लड़का ढूंढ़ लिया है। आप उसे स्वीकार करें।"

मेढ़क राजा ने जब नन्हे कुमार को देखा, तो प्रसन्न हो उठा। उसने अपनी बेटी से उसकी धूमधाम से शादी कर दी। राजा ने अपने दामाद और बेटी के लिए कमल के फूलों का महल बनवाया। दोनों उस महल में रहने लगे। नन्हा राजकुमार जब कभी उदास होता, राजकुमारी उसे तैरने के बहाने घुमाने ले जाती। फूलों की उस दुनिया में घूमते हुए कुछ देर के लिए कुमार सारा दुख भूल जाता, पर अगले ही क्षण वह अपनी माँ की याद में उदास हो जाता।

एक दिन की बात है। नन्हा राजकुमार तैरने के लिए अकेले ही निकल पडा। तैरते हुए वह कुछ ही दूर गया था कि अचानक पानी मे बाढ आ गयी, तो अपने को सँभाल नही सका और पानी की तेज धारा में बहकर दूर चला गया। नन्हा राजकुमार बेहोश हो गया था और दूर किनारे पर जा पडा था। उधर उड़ती हुई तितलियाँ आईं। उन्होंने वहाँ उस छोटे राजकुमार को देखा, जिसकी देह से अभी भी ज्योति निकल रही थी। उन तितलियों को उस छोटे राज-कुमार पर तरस आ गया और वे उसे अपने परों पर बैठाकर अपनी रानी के पास महल मे ले गईं। उप-चार के बाद जब राजकुमार को होश आया, तो उसने

अपने को एक अनजानी नगरी में पाया। चारों तरफ सुगन्ध ही सुगन्ध फैल रही थी। फूलों की सुन्दर क्यारियाँ उस नगरी को स्वर्ग का-सा रूप प्रदान कर रही थीं।

तितलियों की रानी ने सोचा, यह नन्हा राजकुमार उसकी गुड़िया बेटी के लिए बहुत ही उपयुक्त है। रानी ने उस कुमार का अता-पता जानने के ख्याल से पूछा, "तुम कौन हो, कहाँ रहते हो और वहाँ से कैसे पानी में बहकर आ गए?"

इन सारे प्रश्नों का उत्तर देते हुए कुमार से कहा, "मुझे सिर्फ इतना याद है कि मैं तैर रहा था। अचानक बाढ़ आ जाने के कारण बहकर इधर आ गया। उसके बाद मुझे कुछ भी याद नहीं कि यहाँ कैसे पहुँच गया।"

रानी ने कहा, "ठीक है, तुम जो भी हो, जहाँ से भी आए हो, हमें इससे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं इस तितली नगरी की रानी हूँ। मैंने फैसला किया है कि तुम्हारी शादी मैं अपनी बेटी से कर दूँ। अब तुम आराम से यहीं रहो और हमारी नगरी के राजा बन जाओ।"

और तितलियों की रानी ने धूमधाम से उस राज-

कुमार की शादी अपनी चाँद-सी बेटी मे कर दी । राजकुमार की शादी तो फिर हो गयी, पर उसके मन से अपनी माँ की याद अभी भी नहीं गयी थी । वह अपनी माँ से मिलने के लिए बेचैन था, पर वह कुछ कर नहीं सकता था । वह बिलकुल लाचार था । माँ की याद उसे जब भी सताती, वह चुपके से महल के बगीचे में पहुँच जाता और घण्टो बैठकर माँ से मिलने की युक्ति सोचता रहता था ।

वसन्त आ गया । एक दिन राजकुमार सोच मे डूबा, बगीचे मे बैठा था कि एक कोयल आ गयी । उसने कुमार से कहा, "नन्हे कुमार, तुम उदास क्यों हो ?"

नन्हे कुमार ने आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम्हें किस ने बताया कि मैं उदास हूँ ?"

"मैं सब जानती हूँ ।" कोयल ने कहा, "मुझे तुम्हारी सारी पिछली कहानी मालूम है । तुम्हें अपनी माँ की याद सता रही है न ! तुम अपनी माँ से मिलने के लिए बहुत बेचैन हो न ! सभी प्रकार के सुख पाकर भी तुम अपनी माँ को नहीं भुला सके हो । सच ही है, माता के प्यार के सामने भला इन सुखों का क्या मोल !"

राजकुमार को यह सब सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ; पर राजकुमार ने सोचा, यह तो सब जानती है। इससे कुछ भी छुपाना बेकार है। उसने कहा, "तुम ठीक कहती हो, कोयल रानी। मुझे सभी प्रकार के सुख उपलब्ध हैं—पर बावजूद इसके मैं अपनी माँ को नहीं भुला पाया हूँ। बेचारी ने न जाने कितनी मुश्किलों से मुझे पाया था—कितने प्यार से मुझे पाला—पर अब जब मैं उसे कुछ सुख देता, तो भटक-कर उससे दूर चला आया हूँ। न जाने वह कहाँ और किस हाल में है, कोयल रानी! जब तुम सारी बातें जानती ही हो, तो मुझे मेरी माँ से मिलने की कोई तरकीब भी बता दो न! यहाँ से निकलने की कोई राह दिखा दो न!"

राजकुमार की बातों पर कोयल को रोना आ गया। उसने कुछ देर सोचा; फिर बोली, "कुमार, मैं तुम्हारे दर्द को समझती हूँ। मैं तुम्हें जैसा कहूँ, करो—तभी यहाँ से निकल सकोगे और अपनी माँ से मिल सकोगे। जब इस नगरी के सभी लोग सो रहे हों—तुम इस बगीचे में चुपके से पहुँच जाना, मैं अपने पंखों पर बैठाकर तुम्हे तुम्हारी माँ के पास पहुँचा दूंगी।"

नन्हें कुमार ने कहा, "अच्छा।" और उसने वैसा

ही किया । एक दिन जब सारी नगरी नींद की गोद में थी, राजकुमार चुपके से बागीचे में पहुँच गया। कोयल वहाँ पहले से ही बैठी थी। जैसे ही राजकुमार वहाँ पहुँचा, उसने राजकुमार को अपने पंखों पर बैठा लिया और उड चली। बहुत देर के बाद आखिर वह उस गाँव में पहुँची जहाँ राजकुमार की दुखिया माँ रह रही थी। नन्हे कुमार को वापस आया देखकर वह खुशी मे पागल हो गई। नन्हा कुमार भी अपनी माँ मे मिलकर स्वर्ग के मुख का अनुभव करने लगा। उसने कोयल को धन्यवाद करते हुए कहा, "तुम्हारा यह उपकार मैं कभी भी नही भुला पाऊँगा, कोयल रानी !"

सच ही है, जो दुख मे साथ दे, वही सच्चा मित्र है। ऐसा मित्र संसार मे विरला ही मिलता है।

८ | मिट्टी की सौगंध

किशोर, दस साल के बाद, विदेश जाने से पहले कुछ दिन छुट्टी मनाने, गाँव के अपने पुराने घर आया हुआ था। गाँव के वातावरण में हवा की ताजगी, मिट्टी की सुगंध और आम की गाछी से कोयल या किसी अन्य पक्षी की पुकार सुनकर उसका मन खिल उठता था। भला यह सब शहर में कहाँ! वहाँ तो आसमान भी साफ नजर नहीं आता। मशीनों की चीख-पुकार के बीच प्रकृति की आवाज अपना दम तोड़ती नजर आती है और कोलाहल एवं रफ्तार के बीच जिन्दगी के ठहरे पल भी असह्य हो जाते हैं। यही है शहरी जिन्दगी, जहाँ किशोर का दम घुटता जा रहा था। पर अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे दमघोटू वातावरण से मुँह मोड़ लेना पड़ा था। यहाँ एक बार भी वह आ नहीं पाता, अगर वह एकदम से चल नहीं देता! किशोर को देखकर बूढ़े चाचा-चाची की आँखें छलक आयी थीं।

"अरे, कितना बड़ा हो गया है लल्ला !"

"लल्ला कौन, चाची···" किशोर ने शरारत से पूछा।

"और कौन रे—तू ही मेरा लल्ला, मेरा राजा बेटा है !"

"अच्छा, अच्छा···!"

गाँव के बड़े-छोटे सब किशोर से मिलने आते रहे। किशोर भी घूम-घूमकर सबसे मिलता रहा। किशोर को देखकर बड़े-बूढ़ों को गुजरे डाक बाबू की याद हो आयी थी। कितने सज्जन और तेजस्वी थे वे ! पर समय की मार ने उनके परिवार को किस तरह तोड़कर रख दिया था ! पर अपनी आँखों में वे अपने परिवार की दुर्दशा को ज्यादा दिन सँभाल नहीं पाए थे। उनके गुजर जाने के बाद सैलाब ने और तेजी पकड़ ली थी। इसी बहाव में ऊबते-डूबते किशोर ने एक दिन अपने को शहर के एक बंगाली परिवार में पाया था। पढ़ने-लिखने में उसकी विलक्षण बुद्धि को देखकर उस बंगाली परिवार ने किशोर को पढ़ने-लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया। किशोर एक ओर तो घर के कामकाज में निपुण होता गया और दूसरी ओर पढ़ाई-लिखाई में

भी आगे बढ़ता गया।

किशोर ने जहाँ एक शरणार्थी के रूप में शरण पायी थी, वह ज्यादा बड़ा परिवार नहीं था। घोष बाबू, उनकी पत्नी, दो लड़के - अविनाश और निखिल के अलावा उनकी एक बेटी थी सुचित्रा। अविनाश ने शुरू से ही किशोर को भाई का-सा स्नेह दिया। घोष बाबू और उनकी पत्नी के व्यवहार में सहज रूप में समय के साथ-साथ परिवर्तन आता चला गया, किन्तु निखिल और सुचित्रा का स्वभाव इन लोगों से बड़ा भिन्न था। इन दोनों ने किशोर को एक नौकर या एक शरणार्थी से ज्यादा कभी कुछ नहीं माना। किशोर स्वभाव से खामोश प्रकृति का तो न था, लेकिन समय और अविनाश के स्नेह ने उसे चुप कर दिया था। शायद, यही कारण था कि वह चुपचाप उन दोनों के मन और व्यवहार को सहन करता रहा। अविनाश किशोर से बड़ा होते हुए भी उससे दोस्त की तरह बातें और व्यवहार करता। सच कहा जाए तो आठ साल लम्बी इस जीवन-यात्रा में अविनाश का ही साथ था जिसके कारण किशोर उस घर में रहकर कई अनुभवों का स्वामी बन गया था। लेकिन, उस दिन किशोर सचमुच ही चौक गया था, जब सुचित्रा ने उससे

कहा कि वह उसके साथ सिनेमा जाना चाहती है। किशोर तुरन्त फैसला नहीं कर सका था कि उसे क्या करना चाहिए। वह चुप रह गया था। सुचित्रा बुरा मानकर चली गयी थी। घर में जो हंगामा होना था, हुआ, पर इससे पहले कि अविनाश कुछ बोलता, सुचित्रा ने ही बात शुरू कर दी। सब उसकी तरफ देखते रह गए थे। वह किशोर का पक्ष लेकर बोल रही थी। किशोर और अविनाश दोनों ने महसूस किया कि सुचित्रा के व्यवहार में एक अनोखा परिवर्तन आ गया है। अविनाश ने एक दिन हँसते हुए किशोर से कहा भी, "यार, लगता है, मेरी बहन तुमसे प्यार करने लगी है। क्योंकि, यह सब जो तुम देख रहे हो, प्यार की ही ओर संकेत करता है।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?" क्या तुमने कभी प्रेम किया है ?"

"हाँ यार, मैं अनुभवी हूँ।" बड़ी रहस्यपूर्ण मुस्कान के साथ अविनाश ने कहा।

सुचित्रा के इस तरह अपनी ओर बढ़ने आकर्षण से किशोर को खुशी नहीं मिल रही थी। वह अविनाश को अपने मन की बात बताता—"यह तो एक तरह बन्धन-सा हो रहा है मेरे ऊपर कि मैं उसकी

हर इच्छा की पूर्ति करता जाऊँ।" पर किशोर और अविनाश को सुमित्रा के व्यवहार से पता चल गया था कि सुमित्रा का किशोर की ओर पर आकर्षण उस दिन से आरम्भ हुआ, जब उसे पता चला कि डाक्टरी की पढ़ाई के लिए बाहर जाने के वास्ते किशोर को छात्रवृत्ति मिली है। पर किशोर सब की सुनता रहा। उसने अब गाँव जाने की बात सबके सामने रखी, तो पिता अविनाश ने पहले उसे रोका। लेकिन किशोर अड़ा ही रहा। अपने घर की मिट्टी का आकर्षण उसे गाँव खींच ही लाया। चलते समय सुमित्रा ने कहा, "किशोर, मुझे मालूम है, तुम गाँव में ज्यादा दिन टिक नहीं पाओगे—आ जाना, छुट्टी के बाकी दिन हम दोनों घूम-फिरकर बिताएँगे।" किशोर कुछ न बोला था। लेकिन मन-ही-मन उसने सोच लिया था कि वह पूरी छुट्टी चाहे जैसे भी हो, गाँव में ही बिताएगा।

गाँव पहुँचकर उसे वहाँ की हर वस्तु में अपनापन मिल रहा था। घर में चाचा-चाची के अलावा और कोई न था। उनके इकलौते बेटे को शहरी आकर्षण ने खींच लिया था। वह कहीं दूर रहता था, अपने परिवार के साथ। घर के काम-काज को निपटाने बिंदिया आती थी—सुबह और शाम। वह पास ही

कहीं किसी झोंपड़ी में अपने बूढ़े पिता और पोलियो-ग्रसित भाई के साथ रहती थी। गांव के हिसाब से,

उसकी शादी की उम्र निकली जा रही थी। वह सिर्फ बीस साल की थी, पर दुख के बोझ और फर्ज निबाहने की धुन ने उसमें खामोशी और सहनशीलता भर दी थी। किशोर के आने पर सबकी तरह उसके चेहरे पर भी खुशी आयी थी। उसी शाम भन्साघर में एकान्त पाकर बिंदिया ने उससे पूछा था, "क्यों बाबू, मुझे पहचानते हो ?"

"हाँ, तुम बिंदिया हो न ?—इसी घर में काम करती हो और···"

"और···?"

"और तो कुछ नहीं जानता।" तभी चाची भण्डार से अचार लेकर लौटती दिखायी दे गयी थीं और दोनों की बातें खत्म हो गयी थी। बिंदिया ने चूल्हे की तरफ मुंह करके अपने आँसू छुपा लिये थे।

दिन बीतने लगे। बिंदिया किशोर का हर तरह से खयाल रखती और किशोर उसके बारे में सुनने और जानने को सदा उत्सुक रहता। उसने जितना बताया, उससे किशोर यह मालूम कर सका कि वह एक अच्छे कुल की, किन्तु गरीब लड़की है। समय की मार ने उन्हे कहाँ से कहाँ ला पटका था ! माँ चल बसी। पिता ·मार हो गए और भाई पहले ही पोलियो का शिकार

होकर असमर्थ हो गया। चाची के स्नेह में उसे घर का-सा आश्रय मिला हुआ था। अपना और यह घर देखना ही बस उसका काम रह गया था। शादी की बात पर पहले वह चुप हो गयी, फिर थोड़ा हँसती हुई बोली, "मेरी शादी तो बचपन में ही, आज से ग्यारह-बारह साल पहले, आम के पेड के चारों ओर फेरे लगा कर हो गयी थी।" इतना कह, वह चली गयी। किशोर को अचानक अपने बचपन के दिन याद आ गए और याद आ गयी नन्ही बिंदिया, जिसके साथ वह खेला करता था। उसी ने तो बिंदिया को आम के पेड़ के चारों तरफ अपने साथ सात बार घूमने को कहा था। घूमने के बाद जब उसने पूछा था, "इससे क्या हुआ?" तो उत्तर में किशोर ने कहा था, "हमारी शादी हो गयी।" नन्ही बिंदिया खुशी में उछल पड़ी थी। ताली बजाते हुए घर की तरफ भागी थी, "मेरी भी शादी हो गयी।"

किशोर का मन धीरे-धीरे बिंदिया की तरफ खिंचने लगा था। दिन तेजी से भागा जा रहा था। छुट्टी खत्म होने के दो दिन पहले, न जाने कैसे अविनाश भी वहाँ आ पहुँचा। किशोर की खुशी की सीमा न रही। उसने अपने मन की बात उसके सामने रखी।

अविनाश ने सिर्फ इतना कहा, "मैंने देखा है—उसमें सच्चाई है। बिना बोले वह भी तुमसे प्रेम करती है। पर उससे पूछ तो लो, क्या वह चार-पाँच साल तक तुम्हारा इन्तजार कर सकती है। सुचित्रा तो बीस दिन भी नहीं ठहर पायी। आजकल वह किसी और के साथ घूम रही है।"

किशोर ने वैसा ही किया। उसने बिंदिया से कहा, "मैं शहर से डाक्टरी पढ़कर पांच साल में लौटूंगा, क्या तुम मेरा इन्तजार करोगी, बिंदिया ?"

बिंदिया बोली, "ग्यारह साल से तो मे इन्तजार कर ही रही हूँ, पांच साल और भी सही। आपको पाने के लिए तो मैं जन्म-भर इन्तजार कर सकती हूँ। लेकिन, मेरी एक शर्त है।"

"वह क्या ··?"

तब तक अविनाश भी खम्भे के पीछे आ खड़ा हुआ था।

"आप डाक्टर बनकर गांव ही आएँगे और यहीं अपनी प्रैक्टिस शुरू करेंगे, क्योंकि शहरों में तो बहुत डाक्टर है, पर यहां···? हर घर को आपकी जरूरत होगी, किशोर बाबू।"

अविनाश की आंखें चमक उठी थीं। किशोर ने

धीरे से विंदिया का हाथ पकड़ते हुए कहा, "बोलो, कौन-सी कसम खाऊँ।"

"कोई नहीं। आपकी बात मेरे लिए कसम से भी बढ़कर है। पर अनुरोध बस इतना है कि अपनी बात पर कायम रहिएगा।" विंदिया रो पड़ी।

किशोर ने थोड़ी-सी मिट्टी उठा ली और कहा, "मैं इस मिट्टी की ही सौगंध खाता हूँ—डाक्टर बनते ही मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा और यहीं रहकर गाँव के लोगों की सेवा करूँगा।" दूसरे दिन किशोर चलने लगा, तो सबके सामने ही विंदिया ने उसकी चरण-धूलि उठा ली और उससे अपनी माँग भर ली। किशोर की आँखें डबडबा आयीं और बिछुड़ने के दुख ने उसे उदास कर दिया। अविनाश ने किशोर के मन की व्यथा महसूस करते हुए कहा, "उदास मत हो, किशोर, तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि तुमने सही मायनों में अपने प्यार की मंजिल पा ली है।"

□

९ | बिखरे मोती

गोविन्द गाँव का एक भोला-भाला लड़का था। बचपन से ही उसके स्वभाव में दया और प्यार कूट-कूटकर भरा था। लेकिन अभी वह पाँच पूरे भी नहीं कर पाया था कि हैजे के प्रकोप में उसके माँ-बाप दोनों ही चल बसे। अब अनाथ गोविन्द रोता हुआ अकेला रह गया। जब कोई उपाय नहीं रहा, तो गोविन्द को उसके मामा अपने साथ उठा लाये। मामा-मामी की छत्र-छाया में पलकर गोविन्द बड़ा होने लगा। गाँव की मेढ़ और पगडंडियों पर कूदते-फाँदते, गोविन्द और गाँव के सरपंच की लड़की गौरी के बीच प्रेम की शुरु-आत हुई। यह बंधन समय के साथ मजबूत होने लगा।

सरपंच को जब इस बात का पता लगा, तो वह आगबबूला हो उठा। एक गरीब बढ़ई के भानजे की यह हिम्मत कि वह मेरी बेटी के साथ इस तरह हिल-मिल जाए!

सरपंच ने कुछ ऐसे जाल रचे कि गोविन्द को

खिरकार गाँव छोड़कर शहर चला जाना पड़ा। विन्द को यह अच्छा नहीं लगा। उसने गाँव की हद पार करते हुए उसकी मिट्टी उठाकर कसम खायी जब तक वह खूब पैसे वाला न हो जाएगा, इस गाँव लौटकर नहीं आएगा। वह पैसे से सरपंच को खरी- ा चाहता था। वह दुखी था, क्योंकि सरपंच ने उसकी वी की खिल्ली उडायी थी। उसने उसके भोले प्यार भी महत्व नही दिया था। परन्तु गोबिन्द को क्या लूम था कि शहर में इतनी आसानी से नौकरी नही लती! गलियों की खाक छानते हुए एक दिन उसकी ताकात चन्द्रा से हो गयी। रूपवती चन्द्रा को देख- गोविन्द उसे एकटक निहारता ही रह गया था। द्रा ने एक ग्रामीण युवक को इस तरह निहारते ा, तो वह मुस्कुरा उठी। वह समझ गयी थी कि निहारने के पीछे उसके रूप की तारीफ के सिवा र कुछ न था। उसने गोविन्द से पूछा, "कहाँ से ए हो तुम?"

वह चौंका—"जी""जी, मैं बिहार के एक गाँव से या हूँ, मैं कोई काम ढूँढ़ रहा हूँ।"

चन्द्रा को न जाने क्या सूझा! बोली, "अच्छा, म मेरे साथ चलो। पहले कुछ खा-पी लो, फिर काम

की बात सोचेंगे । ऐसा लगता है, तुमने बहुत दिनों से ठीक से खाया भी नहीं है।"

"वह तो है'''।" इससे आगे गोविन्द कुछ न कह

सका। चन्द्रा के मकान में घुसने के बाद भी गोबिन्द को पता न चला कि चन्द्रा क्या है! वह अन्दर की सजावट देखकर दंग था।

चन्द्रा ने उसे बड़े प्यार से खाना खिलाने के बाद पूछा, "तुम पान की दुकान खोलना चाहते हो? अगर हाँ, तो मेरे मकान के नीचे वाले भाग में खोल सकते हो।"

गोबिन्द ने खुशी के साथ यह बात मान ली। अन्धा क्या चाहे?—दो आँखें।

थोड़े ही दिनों में गोबिन्द ने जान लिया कि उसकी नेक, ख़ूबसूरत, रहमदिल चन्द्रा बीबी एक वेश्या है। वह हर शाम सज-धजकर रईसों के सामने बैठकर मुजरा किया करती है। गोबिन्द कई बार सोचता, 'आखिर चन्द्रा रोज-रोज यह नाच-गाना क्यों करती है!' लेकिन चन्द्रा के स्वर की तारीफ़ में जब वह इन रईसों की बातें सुनता, तो गद्‌गद हो जाता। धीरे-धीरे उसे यह भी मालूम हो चला कि वेश्या चाहे कितनी भी अच्छी हो, उसे समाज में वह सम्मान नहीं मिल सकता, जो आम बहू-बेटियों को मिलता है। मुहल्ले में लोगों की जब वह तरह-तरह की बातें सुनता, तो गोबिन्द का एक मन होता कि वह इस बदनाम गली

रो, पान की दुकान चलाना छोड़कर कहीं और चला जाए। लेकिन चन्द्रा बीबी का खयाल आते ही वह अपना इरादा बदल लेता। वह हर रात जब दुकान बन्द कर, ऊपर जाता, तो देखता, चन्द्रा बिस्तर से टेक लगाए चुपचाप बैठी होती। आँखें बन्द किए न जाने वह क्या सोचती रहती! गोविन्द सँभलकर कदम उठाता ताकि उसकी आहट से चन्द्रा की शान्ति में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। पर, चन्द्रा के चेहरे पर की उदासी उससे बर्दाश्त नहीं होती। रोज नींद की गोली खाकर चन्द्रा का सोना भी गोविन्द बड़ी मुश्किल के सह पाता था। लेकिन गोली खाने से पहले पेट भर खाना खिलाने वाली ममतामयी चन्द्रा बीबी से गोविन्द कुछ भी न पूछ पाता। एक दिन वह अपने को रोक न सका और पूछ ही बैठा।

चन्द्रा पहले तो मुस्कुराई, पर फिर न जाने क्यों उसकी आँखें भर आयीं! शायद उसे किसी हमदर्द की तलाश थी। वह कहने लगी, "मेरी माँ को भी गरीबी के नाग ने डसा था, रे गोविन्द! वह भी पैसे का महत्व इन्सान से कम करके दिखाना चाहती थी। पर इस पैसे को प्राप्त करने के लिए उसे अपनी को खतम कर देना पड़ा। अब उसके पास पैसे

भी बहुत थे और अपनी बेटी के लिए प्यार भी बहुत। पर, अपनी बदनामी का साया उसकी बेटी पर न पड़े, इस खयाल से उसने अपनी बेटी को अपने से दूर कर दिया। उसकी बेटी चन्द्रा दूर के एक कॉन्वेन्ट मे पढने लगी। महीने में एक या दो चक्कर लगाने वाली माँ का वह हर रोज ही इन्तजार करती। न जाने वह अपनी माँ से इतना प्यार क्यों करती थी! वह बड़ी हो चुकी थी। स्कूल से फारिग होने का वक्त आ गया था, पर तभी एक दिन माँ की बीमारी की खबर पाकर चन्द्रा अपना स्कूल छोड़कर माँ को देखने चली गयी। दम तोड़ती माँ को देखकर उसका दिल बैठ गया। माँ के मरने के बाद जब वह जाने की सोचने लगी, तो देखा—उसके हाथों और पैरों में कितनी जजीरें पड़ी हुई है! माँ के ठाट-बाट देखकर वह चौकी थी। बाद में पता चला, उसकी माँ के ऊपर करीब पन्द्रह हजार रुपये का कर्ज है। इसे चन्द्रा को चुकता करना है। इसे उसने अपना फर्ज मान लिया। वह जाल मे फँस गयी। एक बार कोठे पर चढ़ने के बाद वह फिर उतर नही पायी। वह उतरना चाहती थी, पर घर बसाने के उसके सपने कभी सच होते नही दिखाई पड़े।"

थोड़ी देर साँस लेकर चन्द्रा ने कहा, "गोविन्द,

तुम्हें पैसा चाहिए—ले जाओ मेरे सारे पैसे, पर इससे क्या होगा ? मुझे देखो, मेरे पास पैसे से खरीदी जाने वाली हर चीज है। पर, रातों की नींद-चैन और वह इज्जत कहाँ से और कैसे खरीदूं, जिसकी मुझे सबसे अधिक जरूरत है ?" और चन्द्रा रो पड़ी।

चन्द्रा को रोते देखकर गोविन्द सकपका गया। चन्द्रा ने कहा, मुझ जैसी औरतों से कोई भी भला इन्सान शादी क्यों करना चाहेगा ! मैं शादी करना चाहती हूँ, घर बसाना चाहती हूँ, कौन करेगा मुझसे शादी ?"

गोविन्द कुछ न बोल रहा था। अचानक चन्द्रा ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा, "गोविन्द, तुम्हें धन चाहिए और मुझे एक नेक इन्सान का साथ। तुम मुझसे शादी करोगे ?"

"जी ' ?" गोविन्द के गले में जैसे कुछ अटक गया था।

वह हँस पड़ी, "बस ''इतने में ही ?" चन्द्रा की हँसी की करुणा गोबिन्द के सीने को जैसे चीरकर रख दिया। उसने झट से चन्द्रा का हाथ पकड़ लिया—"करूँगा शादी, चन्द्रा बीबी !"

"क्या ''?" अब चन्द्रा को विश्वास नहीं हो रहा

था। पर, यह सच था। गोविन्द की चौड़ी छाती पर सिर टिकाते हुए राहत की साँस लेती हुई चन्द्रा ने कहा, "तो मुझे चन्द्रा कहो—चन्द्रा बीबी नहीं!"

गोविन्द ने उसे प्यार से कहा, "चन्द्रा!" इस तरह शहरी समाज की गन्दगी से उठाए उस मोती से गाँव के उस नेक इन्सान ने अपने घर को उजला कर लिया था।

□

१० | सांप की अंगूठी

ाहुत दिन पहले की बात है। चार दोस्त थे। चारों ा एक बार देश-विदेश घूमने का फैसला किया। तीन ो अमीर थे, पर चौथा रामबहादुर गरीब था। पर ोस्तों के सामने वह झुकना नहीं चाहता था। यात्रा े लिए मां के पास जब वह पैसे मांगने पहुँचा, तो उसे ता चला कि घर में पैसे के नाम पर सिर्फ चार रुपए । ममतामयी मां ने अपने बेटे की इच्छा-पूर्ति के लेए अपना खयाल किए बिना वह चार रुपए भी दे देए। चारों दोस्त निकल पड़े।

तीनों अमीर दोस्त तो आगे-आगे चलते, पर ारीब रामबहादुर पीछे-पीछे ही चलता रहता और इस ारह वह अक्सर अकेला पड़ जाता। इसी तरह चलते-ालते उसने देखा कि एक आदमी एक कुत्ते को बुरी ारह पीट रहा है। रामबहादुर से नहीं रहा गया। वह ुसके पास पहुँचा और कहने लगा, "इस कुत्ते को ितनी बेरहमी से क्यों मार रहे हो? यह अच्छी बात

नहीं। क्या तुम्हे पता नहीं है कि हिंसा पाप है?"

रामबहादुर की बातों का उस व्यक्ति पर कोई असर नही हुआ। उसने उसका कहना नहीं माना। इस पर रामबहादुर को एक युक्ति सूझी। उसने बटुए से एक रुपया निकाला और बोला, "अगर तुम कुत्ते को छोड़ दो, तो मैं तुम्हें यह रुपया दे दूंगा।"

उस व्यक्ति ने सोचा कि कुत्ते को मारकर मुझे क्या मिलना है। अगर इस व्यक्ति की बात मान लूं, तो एक रुपया तो मिल जाएगा। उसने रामबहादुर से एक रुपया लेकर कुत्ते को छोड़ दिया। निर्ममता से मुक्त होने पर कुत्ता रामबहादुर के पास आया और बोला, "मुझे आपने बचाया है, इस उपकार को मैं कभी नही भूलूंगा। आप जब कभी किसी संकट मे पड़े, या आपको दुख हो, तो मुझे जरूर याद कीजिएगा। शायद, मैं भी आपके कुछ काम आऊँ।"

कुछ ही दूरी की यात्रा के बाद रामबहादुर को कुत्ते के बाद इसी तरह एक बिल्ली और एक चूहा भी मिला। अजब संयोग कि इन दोनों प्राणियों को भी अलग-अलग व्यक्ति उसी तरह सता रहे थे। इन दोनों को बचाने के लिए उसी तरह रामबहादुर ने एक-एक रुपया खर्च कर दिया। बिल्ली और चूहे ने भी राम-

बहादुर को गुस्से की तरह दुख में या जरूरत पड़ने पर याद करने के लिए कहा। रामबहादुर के पास अब बटुए में सिर्फ एक रुपया रह गया, जिसे उसने उसी तरह एक साँप को बचाने में खर्च कर दिया। अब उसके पास पैसे नहीं थे, पर उसे पैसे खर्च करने का थोड़ा भी गम नहीं था। बल्कि उसे परम संतोष मिल रहा था कि उसने चार प्राणियों की रक्षा करने में अपने पैसों का सदुपयोग किया था।

सबसे पहले साँप रामबहादुर के पास आया और बोला, "आपने कृपा कर मेरी जान बचायी है, इसलिए आपसे विनती है, आप मेरे घर चलिए।"

रामबहादुर के मन में भय हुआ—'साँप और मनुष्य ! भला इन दोनों की कैसी मित्रता ? कहीं साँप उसे मारने की तो नहीं सोच रहा है !'

साँप ने उसके मन की बात भाँप ली। उसने रामबहादुर से कहा, "आप डरिए मत। मैं कोई साधारण साँप नही हूँ। मैं नागराज का पुत्र हूँ। आप अगर मेरे साथ चलेंगे, तो यह आपके लिए अच्छा ही होगा।"

रामबहादुर कुछ न बोल सका। वह उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। कुछ दूर चलने के बाद एक छोटा-सा

बिल मिला। सांप आसानी से उस बिल से होकर अन्दर चला गया। पर रामबहादुर वहाँ पहुँचकर खड़ा हो, सोचने लगा—वह उस बिल के अन्दर कैसे जाए? अचानक रामबहादुर ने देखा कि उस बिल का मुंह चौड़ा हो गया और रामबहादुर उसके भीतर आसानी से पहुँच गया। अन्दर पहुँचकर रामबहादुर ने जो कुछ देखा, उससे उसकी आँखें फटी की फटी रह गयी। नाग के लड़के ने रामबहादुर को बता दिया था कि आपको देखकर मेरे परिवार के सारे लोग फन फैलाए हुए आपकी ओर बढ़ेंगे पर आप डरिएगा नहीं, और मैं उनको जिस तरह सम्बोधित करूँगा, आप भी उसी का अनुसरण कीजिएगा। वे आपको कुछ नहीं कहेंगे। और हुआ भी वैसा ही। पिता, माता, बहन-भाई, सभी जनों को उसने नागपुत्र की तरह ही बुलाया, तो सब हैरान होकर उसे देखने लगे। नागपुत्र ने अपने पिता को सारी कहानी सुनाई। सभी रामबहादुर से बहुत खुश हुए और उसे आराम-पूर्वक तब तक रहने को कहा, जब तक उसकी स्वयं इच्छा हो।

रामबहादुर कुछ दिन तो बड़े आनन्द से नागपुत्र के साथ उस महल में रहा। लेकिन थोड़े ही दिन बाद

उसे अपनी माँ की याद सताने लगी। उसने नागपुत्र से अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की। नागपुत्र ने उससे कहा, "आप जाना ही चाहते हैं, तो जाने से पहले मेरे पिता से जरूर मिल लीजिए। जब आप उनसे मिलेंगे, तो वे आपसे पूछेंगे—'बेटा, तुम्हें क्या चाहिए ?' इसके उत्तर में आप उनकी बीच की उँगली की अँगूठी माँग लीजिएगा। पहले तो वे आपकी माँग स्वीकार करने में आनाकानी करेंगे, पर अगर आप अड़े रहे तो आप उस अँगूठी को हासिल कर लेंगे।"

रामबहादुर ने वैसा ही किया। उस अँगूठी को हासिल करके वह उसके प्रभाव से शीघ्र ही अपने घर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने जो कुछ देखा— उससे वह पूरी तरह अचम्भित हो उठा। उसने देखा कि उसकी झोंपड़ी की जगह एक महल खड़ा हो चुका है और उस महल के अन्दर जीवन की सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। माँ भी प्रसन्नचित्त, सजी-सँवरी बैठी है। रामबहादुर यह सब देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। चलते समय नागपुत्र ने उसे समझाकर कहा था कि इस अँगूठी को आप हर समय सँभालकर रखियेगा। जब तक यह अँगूठी आपके पास रहेगी, आपको किसी चीज की कमी नहीं होगी। पर इसके जाते ही आपकी

स्थिति पहले की तरह हो जाएगी ।

रामबहादुर ने माँ को अपनी सारी बातें बतायीं और अँगूठी को ठीक से सँभालकर रखने को कहा । माँ ने अँगूठी को छिपाकर बक्से में रख दिया और वे सुखपूर्वक रहने लगे ।

माँ को रामबहादुर ने ये बातें किसी को न बताने के लिए कहा था । पर, औरत के पेट में भला बातें कब तक पचती ! धीरे-धीरे ये बातें एक कान से दूसरे कान होते हुए उस देश के लोभी राजा तक पहुँच गयी । जब इस अँगूठी की कहानी राजा ने सुनी, तो वह अँगूठी हासिल करने की सोचने लगा । पहले उसने अपने एक मंत्री को भेजा ।

मंत्री अपना रूप बदलकर रामबहादुर के घर पहुँचा । उस समय रामबहादुर बाहर गया हुआ था । माँ घर में अकेली थी । माँ से मिलकर वह कहने लगा, "माता जी, मैं एक सुनार हूँ । गरीब हूँ । पर, राजा ने हुक्म दिया है कि आपके बेटे की अँगूठी की तरह अँगूठी न बना दी, तो वह मुझे जान से मरवा डालेगा । आप मेरी मदद प्राण-रक्षा कीजिए । मुझे दिखा को दे दूँ

और अपनी जान बचा सकूं।"

माँ ने सोचा, अँगूठी दिखानी ही तो है—देनी तो
नहीं—क्या हर्ज है, बेचारे की जान बच जायेगी। उस
चतुर मंत्री को वह अँगूठी दिखा दी। मंत्री ने बड़े
अच्छी तरह से उसे देखा और वैसी ही अँगूठी रातों
रात तैयार करवाकर दूसरे दिन फिर रामबहादुर के
घर जा पहुँचा। वह जान-बूझकर रामबहादुर के घ
उस समय गया, जब रामबहादुर घर में नहीं था। उस
उसकी माँ से कहा, "कृपा करके आप मुझे आज ए
बार फिर वह अँगूठी दिखा दें। मैंने वैसी ही अँगूठी
राजा के लिए तैयार तो कर ली है, पर कहीं कोई कमी
न रह गयी हो—इसकी जाँच मैं उस अँगूठी को ए
बार फिर देखकर कर लेना चाहता हूँ।" माँ ने फि
वह अँगूठी निकाल कर उसे दिखायी। चतुर मंत्री ने
माँ की नजर बचाकर असली की जगह लेकर नकली
अँगूठी रख दी और असली लेकर चलता बना।

अँगूठी के जाते ही रामबहादुर के घर में फिर से
गरीबी के लक्षण नजर आने लगे। रामबहादुर ने
जब माँ से सब बातें सुनीं, तो सिर पकड़कर बैठ गया।
अब वह क्या करे, कुछ समझ में नहीं आता। घर में
अब फिर से पैसे के नाम पर एक पैसा भी नहीं रहा।

तभी उसे याद आयी उन तीन जानवरों की—जिनकी उसने प्राण-रक्षा की थी और बदले मे उन्होंने दुख में याद करने को कहा था। जैसे ही उसने उन जानवरों को याद किया—कुत्ता, बिल्ली और चूहा तीनों उपस्थित हो गए। "क्या बात है?" तीनों ने एक-साथ पूछा। रामबहादुर ने सारी कथा सुना दी और कहा, "वह अँगूठी किसी तरह अगर राजा से लेकर मुझे फिर से हासिल करा दें, तो मेरी सारी परेशानी फिर से खत्म हो जाए।" इस पर कुत्ते ने कहा, "वह अगूठी छुपाकर कहाँ रखी गई है, इसका पता मैं सूंघकर लगा लूँगा।" बिल्ली ने कहा, "और मै यह पता कर सकती हूँ कि अँगूठी किस कमरे मे किस बक्से में रखी गयी है।" चूहे ने कहा, "आगे का हाल मैं खोज लूँगा। जब हमें यह पता चल जाएगा कि अँगूठी कहाँ रखी है, तो मैं उसे बक्से में छेदकर उस अँगूठी को आसानी से हासिल कर लूँगा।" यह कह कर तीनो चल पडे।

सूँघते-सूँघते तीनों राजा के दरबार तक पहुँच गए। अब तीनों ने मिलकर वैसा ही किया और थोड़ी ही देर में पता कर लिया कि अँगूठी किस कमरे के किस बक्से मे रखी है। बस फिर क्या था—चूहे ने बक्से को कुतरना शुरू कर दिया। कुछ समय के

परिश्रम के बाद, वे तीनों अँगूठी निकालकर लाने में सफल हो गए।

रामबहादुर खुश था कि उसके इन तीनों सच्चे मित्रों ने संकट की घड़ी में अपने वचन को पूरा कर दिखाया। अगूंठी फिर से पाकर वह और भी खुश हुआ। अब वह पुनः अपनी माता के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

□

११ | बोझ

सावित्री एक मध्यम वर्ग के परिवार की बड़ी बेटी थी। उसके पिता सरकारी दफ्तर में मामूली क्लर्क थे। उनकी तनख्वाह मामूली थी, जिससे पाँच सदस्यों का परिवार चलाने में सावित्री की माँ को बहुत कठिनाई होती थी। वह हमेशा झल्लाती रहती। सावित्री की आँखों के सामने उसका पूरा घर था। वह अपने घर को आर्थिक रूप से मदद भी करना चाहती थी, लेकिन मैट्रिक पास लड़की को नौकरी मिले भी तो कहाँ? बेरोजगारों की लम्बी पंक्ति में उसका भी नाम है। उसकी छोटी बहन सुधा पढ़ने में बहुत तेज है, लेकिन दो साल बाद उसके सामने भी वही प्रश्न खड़ा होगा जो आज सावित्री के सामने खड़ा है। कालेज की पढ़ाई हो तो कैसे? बिट्टू छोटा है...पर, वह भी तो बड़ा होगा।

जगदीशचन्द्र ने सुधा और बिट्टू की पढ़ाई जारी रखने के लिए सावित्री की पढ़ाई बन्द करवा दी। वे

करें भी तो क्या ? ओवरटाइम से भी तो अब गुजारा नहीं चल पाता है । सावित्री अपने घर में अपनी

माँ के हर काम में हाथ बँटाती, पर जगदीशचन्द्र के रिश्तेदार या उसके अड़ोस-पड़ोस के सभी व्यक्ति

मिलने पर सब एक ही सवाल करते, "सावित्री के हाथ कब पीले कर रहे हो जगदीशचन्द्र ?" लगता, मानो जगदीशचन्द्र की यह चिन्ता उसकी चिन्ता बन गई, और यह सवाल हर समय जगदीशचन्द्र को तीर-सा चुभा करता । वह छटपटा जाता । कई बार उसकी अपनी पत्नी से भी इस बात को लेकर कहा-सुनी हो जाती । जगदीशचन्द्र सोचता—शादी तो करनी ही है, पर शादी के लिए पैसे कहाँ से आये ? हर सवाल करने वाला जगदीशचन्द्र की उलझन बढ़ा जाता, पर प्रश्न को हल करने के लिए मददगार के रूप में कोई खड़ा नहीं हो पाता ।

जगदीशचन्द्र ने अन्त में फैसला कर लिया कि चाहे जो भी हो, वह अपनी सावित्री के हाथ अवश्य पीले करेगा । उसने कुछ सरकार से और कुछ इधर-उधर से ऋण लेकर, सावित्री की शादी करके अपने बोझ को हल्का करने का संकल्प कर लिया । वह सावित्री के लिए उचित वर की तलाश में लग गया । लड़का पढ़ा-लिखा और सुशील हो, कोई काम करता हो और देखने में भी बुरा न हो । उनकी बेटी के लिए इतना तो चाहिए ही । पर हर जगह जहाँ भी वह इस तरह के वर की खोज में गया—अपनी छाती पर

उसने एक मन का बोझ और बढ़ता हुआ ही महसूस किया। ऐसे लड़के की या तो अपने द्वारा या उसके माता-पिता द्वारा लगाई गयी कीमत को सुनते ही जगदीशचन्द्र की आशाएँ मिट्टी में मिल जातीं। आखिर तंग आकर वह साधारण से साधारण लड़के की तलाश में लग गया। सोचता, जिसकी किस्मत में जो लिखा है उसे कौन टाल सकता है?

सावित्री अपने पिता की परेशानी से पूरी तरह परिचित थी। अपनी शादी की बात उसे गुदगुदाने के बजाय, एक टीस पैदा कर रही थी। उसका मन माँ-बाप के दुख और परेशानी तथा अपनी मजबूरी के बीच दबकर फटा जा रहा था। वह पढ़ना चाहती थी, आगे बढ़ना चाहती थी, पर कैसे? इसी प्रश्न का उत्तर कही न पाकर वह खामोश रहने लगी थी। काश! उसे एक नौकरी ही मिल जाती, तो वह खुद भी पढ़ती और भाई-बहन को भी पढ़ाती। अपने माँ-बाप पर बोझ न रहती, तो वे भी उसे इतनी जल्दी निकालते तो नहीं। इसे वह निकालना ही समझ रही थी और दिन-रात इसी के बारे में सोचती भी रहती। वह चुपचाप जगह-जगह नौकरी पाने का प्रयत्न भी कर रही थी। न जाने उसके मन में एक विश्वास कैसे

[illegible] था कि वह अगर लगन से ढूंढेगी, तो उसे कहीं न कहीं कोई काम मिल ही जायेगा। वह सोचती काम कोई भी बड़ा नहीं होता बड़ा तो मनुष्य के सोचने का ढंग या उसका चरित्र होता है। इन्हीं बातों का दामन थामे सावित्री अपनी राह पर अग्रसर थी।

एक दिन शाम को जगदीशचन्द्र कुछ जल्दी घर लौट आये। उनके चेहरे पर छाई प्रसन्नता ने पूरे घर में एक उजाला फैला दिया। पर, सावित्री का दिल धक से रह गया। वह यही सोच रही थी। लड़का मिल गया था। लड़के वाले उसे देखने आ रहे थे। सावित्री ने सिर झुका कर अपने माता-पिता से एक बार शादी न करने की इच्छा जाहिर की। जगदीश तो चुप रहे, पर माँ चिल्ला पड़ी, "इतनी मुश्किल से तो लड़का मिला है, और अब तू नाटक दिखा रही है? कब तक तुझे हम अपनी छाती पर बोझ बनाए रह सकते हैं?"

इसके बाद सावित्री कुछ न बोल सकी। आँखों मे आँसू डबडबा आये। लड़के वाले उसे देखने आए और पसन्द कर लिया। शादी की तारीख भी पक्की हो गयी, जो अगले ही महीने पड़ती थी। सावित्री के माँ-बाप पैसा और सामान जुटाने में लग गये। घर

में पहली शादी थी । इसलिए सोच-सोच कर ही वे घबरा रहे थे । पर जितना सम्भव था, सब कुछ तैयार करने का प्रयत्न भी कर रहे थे ।

सावित्री का चेहरा पीला पड़ रहा था। रोती आँखें लाल रहती थीं । यह सब सुधा से छिपा न था। वह भी तो जवानी की दहलीज पर पांव रख चुकी थी । उसे अपनी दीदी की परेशानी का अहसास हो रहा था ।

शादी से एक दिन पहले छुप-छुप कर रोती दीदी को देखकर उससे न रहा गया, बोली, "दीदी, अगर तुम शादी नहीं करना चाहती, तो मत करो । तुम्हें अपने मन में पहले विश्वास पैदा करना होगा, तभी तो तुम कुछ कर सकोगी । अगर कमजोर रहोगी, तो इसी तरह सदा रोती ही रह जाओगी ।" अपने से छोटी बहन की बात सुनकर सावित्री के शरीर मे मानो एक नया रक्त-संचार हुआ ।

तभी एक घटना घटी । जगदीशचन्द्र लड़के के घर से लौटे थे, और आते ही अर्ध-मुर्च्छितावस्था में विस्तर पर पड़ गये थे । पूरा परिवार भौंचक उनके इर्द-गिर्द खड़ा था थोड़ी देर में वे बोले, "सावित्री की माँ, अब क्या होगा ?"

"आखिर हुआ क्या है…?"

"लड़के का पिता आज कह रहा था कि कल बारात लेकर जब वह दरवाजे पर आयेगा, तो उसी वक्त उसे दस हजार नकद चाहिए, नही तो वह बारात लौटा ले जाएगा…"

सब चुप थे। जगदीशचन्द्र अकेले बड़बड़ा रहे थे—"दस हजार कहाँ से लाऊँ ? वह भी एक दिन के अन्दर। जितना था, सबका समान खरीदा जा चुका है। दो-एक हजार बचा होगा…हे भगवान, अब क्या होगा ? अपनी टोपी उनके चरणों पर रख दूँगा…किसी तरह उन्हें मनाना तो होगा ही…वरना कही का नही रह जाऊँगा।"

सावित्री चुपचाप कमरे से बाहर निकल आई। उसके पीछे-पीछे सुधा भी।

"अब क्या होगा, दीदी ?"

सावित्री हल्के से मुस्कराई, बोली कुछ नही।

दूसरे दिन सब चुपचाप यंत्रवत् रस्म निभाते रहे। सावित्री दिन में थोड़ी देर के लिए अपनी सहेली रमा के पास गयी। उसे किसी ने रोका नहीं। आखिर उसकी शादी होने वाली थी। फिर जाने कब मिलना हो, कौन जाने !

में पहली शादी थी। इसलिए सोच-सोच कर ही वे घबरा रहे थे। पर जितना सम्भव था, सब कुछ तैयार करने का प्रयत्न भीं कर रहे थे।

सावित्री का चेहरा पीला पड़ रहा था। रोती आँखें लाल रहती थीं। यह सब सुधा से छिपा न था। वह भी तो जवानी की दहलीज पर पाँव रख चुकी थी। उसे अपनी दीदी की परेशानी का अहसास हो रहा था।

शादी से एक दिन पहले छुप-छुप कर रोती दीदी को देखकर उससे न रहा गया, बोली, "दीदी, अगर तुम शादी नहीं करना चाहती, तो मत करो। तुम्हें अपने मन में पहले विश्वास पैदा करना होगा, तभी तो तुम कुछ कर सकोगी। अगर कमजोर रहोगी, तो इसी तरह सदा रोती ही रह जाओगी।" अपने से छोटी बहन की बात सुनकर सावित्री के शरीर में मानो एक नया रक्त-संचार हुआ।

तभी एक घटना घटी। जगदीशचन्द्र लड़के के घर से लौटे थे, और आते ही अर्ध-मुच्छितावस्था में विस्तर पर पड़ गये थे। पूरा परिवार भौंचक उनके इर्द-गिर्द खड़ा था थोड़ी देर मे वे बोले, "सावित्री की माँ, अब क्या होगा ?"

"आखिर हुआ क्या है'''?"

"लड़के का पिता आज कह रहा था कि कल बारात लेकर जब वह दरवाजे पर आयेगा, तो उसी वक्त उसे दस हजार नकद चाहिए, नही तो वह बारात लौटा ले जाएगा'''"

सब चुप थे। जगदीशचन्द्र अकेले बडबडा रहे थे—"दस हजार कहाँ से लाऊँ ? वह भी एक दिन के अन्दर। जितना था, सबका समान खरीदा जा चुका है। दो-एक हजार बचा होगा ''हे भगवान, अब क्या होगा ? अपनी टोपी उनके चरणो पर रख दूंगा ' किसी तरह उन्हे मनाना तो होगा ही'''वरना कही का नही रह जाऊँगा।"

सावित्री चुपचाप कमरे से बाहर निकल आई। उसके पीछे-पीछे सुधा भी।

"अब क्या होगा, दीदी ?"

सावित्री हल्के से मुस्कराई. बोली कुछ नही।

दूसरे दिन सब चुपचाप यन्त्रवत् रस्म निभाते रहे। सावित्री दिन मे थोडी देर के लिए अपनी सहेली रमा के पास गयी। उसे किसी ने रोका नहीं। आखिर उसकी शादी होने वाली थी। फिर जाने [illegible]

हो, कौन जाने !

शाम को सावित्री दुल्हन बनी कमरे में बैठी थी। दूर से ही बारात आने की खबर सुनकर सब उसे अकेला छोड़, बाहर निकल गये। उसके पास केवल रमा रह गयी।

"अब क्या होगा ?"

"तू अपने को सँभाले रख, सावित्री"'बहुत नाजुक अवसर है।"

रमा उसे समझाती रही। तभी सुधा उसके पास आई, "दीदी, चलो तुम्हें बाहर बुला रहे हैं—बारात आ चुकी है।"

रमा और सुधा उसे अपने साथ बाहर ले गयीं। दरवाजे पर पहुँचते ही सावित्री ने देखा—रिश्तेदार, आमंत्रित लोग और अड़ोसी-पड़ोसी की भीड़ में पिता का चेहरा आने वाले सकट के बारे में सोच कर ही पीला पड़ता जा रहा है। इससे पहले कि जयमाला की रस्म होती, लड़के के पिता ने जगदीशचन्द्र से कहा, "आपने जो दस हजार देने का वायदा किया था, वह अब दे दीजिए ताकि हम जयमाला के लिए लड़के को आगे करें।"

जगदीशचन्द्र घिघियाने लगा। बारातियों में एक रोष का वातावरण भर गया। सावित्री सोचती रही—

शायद दूल्हा इस बात का विरोध करेगा । पर वह भी अपने पिता की ही हाँ में हाँ मिला रहा था । सावित्री के पूरे शरीर में आग-सी लग गयी । इससे पहले कि उसके सकपकाते पिता अपनी पगड़ी लड़के के पिता के कदमों में रखते, वह दौड़ती हुई अपने पिता के पास गयी ।

"नहीं पिताजी, इसकी जरूरत नहीं—इनके लिए दहेज का इन्तजाम हो गया है ।"

सभी अवाक् खड़े थे । दुल्हन का ऐसा रूप शायद वहाँ खड़े किसी भी व्यक्ति ने नहीं देखा था, आँखों से ज्वाला निकल रही थी और लगभग चिल्लाने के अन्दाज में—ताकि वहाँ खड़े सब सुन सकें—वह बोल रही थी, "इन लोगों ने, शादी से एक दिन पहले, लड़की के गरीब माँ-बाप की मजबूरी का फायदा उठाकर दस हजार रुपये की माँग की है, जो बिलकुल ही अनुचित है, फिर भी ये लोग इसी उम्मीद से यहाँ तक चलकर आये हैं, तो इन्हें कुछ पुरस्कार मिलना ही चाहिए ।"

सावित्री के इतना कहते ही न जाने कहाँ से सफेद-पोश पुलिस दस्ते ने चारों ओर से लड़के वालों को घेर लिया और देखते ही देखते लड़के और उसके पिता को गिरफ्तार कर लिया । तब सावित्री उनके पास गयी

और कहा, "आप लोग अनैतिक ही नहीं, गैर-कानूनी काम करते हुए थोड़ी भी नही हिचकिचाते। आपको यह सजा तो मिलनी ही थी। जेल से बाहर निकलने पर कृपा करके इन्सान बनने का प्रयत्न कीजिएगा!"

सुधा और माँ सावित्री को अन्दर लिवा गयी। जगदीशचन्द्र व उनकी पत्नी किंकर्तव्यविमूढ थे। रमा ने उन्हे समझाया, "चाचाजी, यह पुलिस को सावित्री ने ही बुलाया था। इस तरह के गैर-कानूनी काम में—जो अनैतिक है—हमे बिल्कुल भी सहयोग नही देना चाहिए। आपको तो मालूम था, चाचाजी, दहेज लेना और देना दोनो जुर्म है, फिर आपने उन लोगों की बात क्योकर स्वीकार की?"

"हाँ माँ, मैं अभी शादी नही करूँगी, कल से ही नौकरी की तलाश मे पूरी तरह लग जाती हूँ। मैं बेटी हूँ तो क्या हुआ—बेटे की तरह पिताजी के कधे का बोझ हल्का करूँगी। मुझे बोझ न समझिये, पिताजी!"

दूसरे दिन पूरे शहर मे सावित्री की बहादुरी की ही चर्चा थी। सब सावित्री का उदाहरण दे रहे थे। उसने कई जगह आवेदन कर रखा था। सावित्री की चर्चा जब आग की तरह फैल गयी, तो सरकार ने भी उसे इस बहादुरी के लिए एक सरकारी दफ्तर में नौकरी

सावित्री ने बड़ा साहस किया,
बेटे की तरह आपके कंधे का बोझ

देकर पुरस्कृत किया। सुधा अपनी दीदी से प्रभावित थी, और अब सावित्री उसका आदर्श बन चुकी थी। इधर जगदीशचन्द्र और उनकी पत्नी अपनी पुत्री के लिए फूले नहीं समा रहे थे।

□